श्रावक सामायिक प्रतिक्रमण सूत्र

(विधि एवं अर्थ सहित)

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

प्रकाशक :
सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

श्रावक

सामायिक प्रतिक्रमण सूत्र

(विधि, अर्थ एवं प्रश्नोत्तर सहित)

सम्पादक :

पार्श्व कुमार मेहता

गुरु हस्ती का यह फरमान सामायिक स्वाध्याय महान्	गुरु हीरा का यह सन्देश व्यसनमुक्त हो सारा देश

सविधि सामायिक सूत्र

सामायिक-साधना करने की विधि

सबसे पहले पूँजनी से स्थान को पूँज कर व आसन की प्रतिलेखना करके आसन को बिछावें। बाद में सफेद चोल-पट्टा, दुपट्टा, मुँहपत्ति आदि सामायिक की वेशभूषा की प्रतिलेखना कर उसको धारण करें व मुँहपत्ति मुँह पर बाँधें। तत्पश्चात् गुरुदेव या सतियाँ जी हों तो उनकी ओर मुँह करके और नहीं हों तो पूर्व दिशा, उत्तर दिशा अथवा ईशान कोण की तरफ मुँह करके निम्न पाठ से तीन बार विधिवत् वन्दना करें।

वन्दना विधि–तिक्खुत्तो का पाठ बोलते तिक्खुत्तो शब्द के उच्चारण के साथ ही दोनों हाथ ललाट के बीच में रखने चाहिए। आयाहिणं शब्द के उच्चारण के साथ अपने दोनों हाथ अपने मस्तक के बीच में से अपने स्वयं के दाहिने (Right) कान की ओर ले जाते हुए गले के पास से होकर बायें (Left) कान की ओर घुमाते हुए पुन: ललाट के बीच में लाना चाहिए। इस प्रकार एक आवर्तन पूरा करना चाहिए। इसी प्रकार से पयाहिणं और करेमि शब्द बोलते हुए भी एक-एक आवर्तन पूरा करना, इस प्रकार तिक्खुत्तो का एक बार पाठ बोलने में तीन आवर्तन देने चाहिए। बाद में घुटनों के बल बैठकर वंदामि बोलें तथा पंचांग (दोनों हाथ, दोनों घुटने व एक सिर) नमाकर नमंसामि बोलें। बाद में घुटनों के बल सीधे बैठकर पज्जुवासामि तक बोलें, फिर 'मत्थएण वंदामि' शब्दोच्चारण के साथ ही जोड़े हुए दोनों हाथ एवं मस्तक गुरु-चरणों में अथवा जमीन पर झुकावें।

1. गुरु वन्दना सूत्र

तिक्खुत्तो, आयाहिणं, पयाहिणं, करेमि, वंदामि, नमंसामि, सक्कारेमि, सम्माणेमि, कल्लाणं, मंगलं, देवयं, चेइयं, पज्जुवासामि, मत्थएण वंदामि।

इसके बाद ईर्यापथिक चउवीसत्थव की आज्ञा लेवें।

2. नवकार महामंत्र

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व-साहूणं।।
एसो पंच-णमोक्कारो, सव्व-पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं।।

3. ईर्यापथिक सूत्र

इच्छाकारेणं संदिसह भगवं! इरियावहियं पडिक्कमामि इच्छं! इच्छामि पडिक्कमिउं। इरियावहियाए विराहणाए गमणागमणे पाणक्कमणे, बीयक्कमणे, हरियक्कमणे, ओसा, उत्तिंग, पणग, दग, मट्टी, मक्कडा, संताणा संकमणे जे मे जीवा विराहिया एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया अभिहया, वत्तिया, लेसिया, संघाइया, संघट्टिया, परियाविया, किलामिया, उद्दविया, ठाणाओ ठाणं संकामिया, जीवियाओ ववरोविया तस्स मिच्छा मि[1] दुक्कडं।

---

1. प्रचलित प्रयोग ''मिच्छामि दुक्कडं'' को मिच्छा मि के रूप में देने का अभिप्राय ''मिच्छामि'' के अर्थ को स्पष्ट करना है। साथ ही व्याकरण की दृष्टि से भी ''मिच्छा मि'' प्रयोग समीचीन प्रतीत होता है। 'मिच्छा' का अर्थ है-मिथ्या एवं 'मि' का अर्थ है-मेरा।

4. आत्म शुद्धि सूत्र

तस्स उत्तरी-करणेणं, पायच्छित्त-करणेणं, विसोहि-करणेणं, विसल्ली-करणेणं, पावाणं कम्माणं निग्घायणट्ठाए, ठामि काउस्सग्गं। अन्नत्थ ऊससिएणं, नीससिएणं, खासिएणं, छीएणं, जंभाइएणं, उड्डुएणं, वायनिसग्गेणं, भमलीए, पित्तमुच्छाए, सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं, सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं, सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं, एवमाइएहिं आगारेहिं, अभग्गो अविराहिओ हुज्ज मे काउस्सग्गो जाव अरिहंताणं भगवंताणं नमोक्कारेणं, न पारेमि ताव कायं ठाणेणं, मोणेणं, झाणेणं, (एक इच्छाकारेणं का काउस्सग्ग[1]) **अप्पाणं वोसिरामि ।।**

5. कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ

काउस्सग्ग में आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान ध्याया हो, धर्मध्यान-शुक्लध्यान नहीं ध्याया हो तथा काउस्सग्ग में मन, वचन और काया चलित हुई हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

---

1. काउस्सग्ग में तस्स मिच्छा मि दुक्कडं के स्थान पर ''आलोउं'' कहें। फिर काउस्सग्ग पूर्ण होने पर 'णमो अरिहंताणं' कह कर काउस्सग्ग पालें, बाद में कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ बोलें। **काउस्सग्ग विधि**-खड़े होकर करें तो दोनों पैरों के बीच में पीछे तीन अंगुल व आगे चार अंगुल जगह छोड़कर दोनों हाथ सीधे लटका कर पैरों के अँगूठे की सीध में दृष्टि जमा कर काउस्सग्ग करें और बैठे-बैठे करें तो पल्यंक आसन से बैठ कर बायें हाथ की हथेली पर दायें हाथ की हथेली रखकर उस पर दृष्टि जमाकर 'अप्पाणं वोसिरामि' शब्द बोलने के साथ काउस्सग्ग प्रारम्भ करें।

6. लोगस्स (तीर्थङ्कर स्तुति) सूत्र

लोगस्स उज्जोयगरे, धम्म-तित्थयरे जिणे।
अरिहंते कित्तइस्सं, चउवीसंपि केवली ।।1 ।।

उसभमजियं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे ।।2 ।।

सुविहिं च पुप्फदंतं, सीयल-सिज्जंस-वासुपुज्जं च।
विमलमणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि ।।3 ।।

कुंथुं अरं च मल्लिं, वंदे मुणिसुव्वयं नमिजिणं च।
वंदामि रिट्ठनेमिं, पासं तह वद्धमाणं च ।।4 ।।

एवं मए अभिथुआ, विहूयरयमला पहीणजरमरणा।
चउवीसंपि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु ।।5 ।।

कित्तिय वंदिय महिया, जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा।
आरुग्ग-बोहिलाभं, समाहिवरमुत्तमं दिंतु ।।6 ।।

चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा।
सागरवर-गंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ।।7 ।।

फिर निम्न पाठ से सामायिक करने की प्रतिज्ञा स्वीकार करें।

7. सामायिक-प्रतिज्ञा सूत्र

करेमि भंते! सामाइयं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि, जावनियमं[1] पज्जुवासामि, दुविहं तिविहेणं, न करेमि न कारवेमि, मणसा

1. जावनियमं के बाद जितनी सामायिक लेनी हो ''उतने मुहूर्त्त उपरान्त न पालूँ तब तक'' ऐसा बोल शेष पाठ पूर्ण करें।

वयसा कायसा, तस्स भंते! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि।

फिर बायाँ घुटना (गोडा) खड़ा करके व दायाँ घुटना उल्टाकर नीचे दबाकर, बायें घुटने पर दोनों हाथ जोड़कर घुटने पर जोड़े हुए दोनों हाथ व उसके ऊपर मस्तक झुकाकर दो बार नमोत्थु णं देवें।

8. शक्रस्तव (नमोत्थु णं) सूत्र

नमोत्थु णं अरिहंताणं भगवंताणं आइगराणं, तित्थयराणं, सयं-संबुद्धाणं, पुरिसुत्तमाणं, पुरिससीहाणं, पुरिसवर-पुंडरीयाणं, पुरिसवरगंधहत्थीणं, लोगुत्तमाणं, लोगनाहाणं, लोगहियाणं, लोगपईवाणं, लोगपज्जोअगराणं, अभयदयाणं, चक्खुदयाणं, मग्गदयाणं, सरणदयाणं, जीवदयाणं, बोहिदयाणं, धम्मदयाणं, धम्मदेसयाणं, धम्मनायगाणं, धम्मसारहीणं, धम्मवर-चाउरंत-चक्कवट्टीणं, दीवोत्ताणं, सरणगइ-पइट्ठाणं अप्पडिहयवरनाण-दंसण-धराणं, विअट्ट-छउमाणं, जिणाणं, जावयाणं, तिन्नाणं तारयाणं, बुद्धाणं, बोहयाणं, मुत्ताणं, मोयगाणं, सव्वण्णूणं, सव्वदरिसीणं, सिव-मयल-मरूअ-मणंत-मक्खय-मव्वाबाह-मपुणरा-वित्ति, सिद्धिगइ-नामधेयं, ठाणं संपत्ताणं[1] नमो जिणाणं जिअभयाणं।

इति ।। सामायिक साधना ग्रहण विधि समाप्त ।।

1. दूसरे नमोत्थु णं में 'ठाणं संपत्ताणं' के स्थान पर '**ठाणं संपाविउकामाणं**' बोलें, शेष पूर्ण पाठ पहले की तरह बोलें।

सामायिक ग्रहण के पश्चात् समापन के काल तक की क्रिया–अध्ययन, स्वाध्याय, ध्यान, जप आदि करना, माला व आनुपूर्वी फेरना तथा प्रार्थना, स्तवन आदि बोलना एवं प्रवचन सुनना।

सामायिक साधना समापन विधि–सामायिक सम्बन्धी दोष निवारणार्थ चउवीसत्थव करने की आज्ञा है। फिर नवकार मन्त्र, इच्छाकारेणं, तस्स उत्तरी के पाठ में 'झाणेणं' तक बोलकर 'एक लोगस्स का काउस्सग्ग' ऐसा बोलकर अप्पाणं वोसिरामि बोलने के साथ विधिवत् एक लोगस्स का काउस्सग्ग करें, फिर लोगस्स पूर्ण होने पर 'नमो अरिहंताणं' ऐसा कहकर काउस्सग्ग पालें, बाद में कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ व लोगस्स का पाठ बोलकर विधिपूर्वक दो बार नमोत्थु णं देवें, बाद में सामायिक पारने व अन्य दोष निवारण हेतु निम्नलिखित पाठ बोलें।

9. एयस्स नवमस्स का पाठ

(सामायिक समापन सूत्र)

1. **एयस्स नवमस्स सामाइय–वयस्स, पंच अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा ते आलोउं–मणदुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे, सामाइयस्स सइ अकरणया, सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।।**

2. **सामाइयं सम्मं काएणं न फासियं, न पालियं, न तीरियं, न किट्टियं, न सोहियं, न आराहियं, आणाए अणुपालियं न भवइ, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।।**

3. सामायिक में दस मन के, दस वचन के, बारह काया के इन बत्तीस दोषों में से किसी भी दोष का सेवन किया हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।।

4. सामायिक में स्त्री कथा[1], भक्त कथा, देश कथा, राज कथा इन चार विकथाओं में से कोई विकथा की हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।।

5. सामायिक में आहार संज्ञा, भय संज्ञा, मैथुन संज्ञा, परिग्रह संज्ञा, इन चार संज्ञाओं में से किसी भी संज्ञा का सेवन किया हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।।

6. सामायिक में अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार का जानते, अजानते, मन, वचन, काया से किसी भी दोष का सेवन किया हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।।

1. श्राविकाएँ 'स्त्री कथा' के स्थान पर 'पुरुष कथा' बोलें ।

7. सामायिक व्रत विधि से ग्रहण किया, विधि से पूर्ण किया, विधि में कोई अविधि हो गई हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।।

8. सामायिक में पाठ उच्चारण करते काना, मात्रा, अनुस्वार, पद, अक्षर, ह्रस्व, दीर्घ, कम, ज्यादा, आगे-पीछे, विपरीत पढ़ने, बोलने में आया हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान की साक्षी से तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।।

फिर तीन बार नवकार मंत्र का स्मरण कर सामायिक पारें।

।। सामायिक साधना समापन विधि समाप्त ।।

।। सविधि सामायिक सूत्र समाप्त ।।

❑❑❑

।। श्री महावीराय नमः ।।

सविधि प्रतिक्रमण सूत्र

साधु-साध्वी हों तो उनके सम्मुख, अन्यथा पूर्व-उत्तर दिशा (ईशान कोण) की ओर मुँह करके तीन बार विधिपूर्वक तिक्खुत्तो के पाठ से वन्दना करें।

चउवीसत्थव की आज्ञा

देवसिय[1] प्रतिक्रमण चउवीसत्थव की आज्ञा है कहकर, निम्न पाठ बोलें :-नवकार मन्त्र, इच्छाकारेणं व तस्स उत्तरी में झाणेणं तक बोलकर 'एक लोगस्स का काउस्सग्ग' ऐसा बोलकर अप्पाणं वोसिरामि बोलने के साथ काउस्सग्ग करें, फिर लोगस्स पूर्ण होने पर 'णमो अरिहंताणं' ऐसा बोल कर काउस्सग्ग पालें, बाद में कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ व लोगस्स का पाठ बोलकर विधिपूर्वक दो बार नमोत्थुणं देवें। फिर तीन बार तिक्खुत्तो के पाठ से वन्दना करें।

प्रतिक्रमण ठाने की आज्ञा

देवसिय प्रतिक्रमण की आज्ञा है कहकर अग्रलिखित पाठ बोलें।

1. प्रातःकाल में राइय, पक्खी के दिन पक्खिय, चौमासी के दिन चाउम्मासिय तथा संवत्सरी के दिन संवच्छरिय बोलें।

1. इच्छामि णं भंते का पाठ

इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे देवसियं[1] पडिक्कमणं ठाएमि देवसिय-नाण-दंसण-चरित्ताचरित्त-तव-अइयार-चिंतणत्थं करेमि काउस्सग्गं।

फिर एक नवकार मंत्र बोल कर तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वन्दन करें।

प्रथम आवश्यक

प्रथम आवश्यक की आज्ञा कहकर ''करेमि भंते!'' का पाठ बोलें फिर निम्न पाठ बोलें।

2. इच्छामि ठामि का पाठ

इच्छामि ठामि काउस्सग्गं जो मे देवसिओ[2] अइयारो कओ, काइओ, वाइओ, माणसिओ, उस्सुत्तो, उम्मग्गो, अकप्पो, अकरणिज्जो, दुज्झाओ, दुव्विचिंतिओ, अणायारो, अणिच्छियव्वो, असावगपाउग्गो, नाणे तह दंसणे, चरित्ताचरित्ते, सुए सामाइए, तिण्हं गुत्तीणं, चउण्हं कसायाणं, पंचण्हमणुव्वयाणं, तिण्हं गुणव्वयाणं, चउण्हं सिक्खावयाणं बारस-विहस्स सावग-धम्मस्स, जं खंडियं जं विराहियं तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।।

---

1. प्रात:काल में राइयं, पक्खी के दिन पक्खियं, चौमासी के दिन चाउम्मासियं और संवत्सरी के दिन संवच्छरियं बोलें।
2. प्रात:काल में राइयो, पक्खी के दिन पक्खिओ, चौमासी के दिन चाउम्मासिओ और संवत्सरी के दिन संवच्छरिओ बोलें।

फिर तस्स उत्तरी का पाठ झाणेणं तक उच्चारण कर '99 अतिचारों का काउस्सग्ग' ऐसा बोलकर 'अप्पाणं वोसिरामि' बोलने के साथ विधि सहित काउस्सग्ग[1] करें। काउस्सग्ग में निम्नलिखित 99 अतिचारों का, समुच्चय पाठ, अठारह पाप स्थान और इच्छामि ठामि का चिन्तन करें। किन्तु 'इच्छामि ठामि काउस्सग्गं' के स्थान पर ''इच्छामि आलोउं'' कहें। उक्त अतिचारों का चिन्तन करने के पश्चात् 'नमो अरिहंताणं' ऐसा बोल कर काउस्सग्ग पालें तथा कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ प्रकट में बोलें।

3. आगमे तिविहे का पाठ

आगमे तिविहे पण्णत्ते तं जहा-सुत्तागमे, अत्थागमे, तदुभयागमे, इस तरह तीन प्रकार के आगम रूप ज्ञान के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं-जं वाइद्धं, वच्चामेलियं, हीणक्खरं, अच्चक्खरं, पयहीणं, विणयहीणं, जोगहीणं, घोसहीणं, सुट्ठुदिण्णं, दुट्ठु-पडिच्छियं, अकाले कओ सज्झाओ, काले न कओ सज्झाओ, असज्झाइए सज्झायं, सज्झाइए न सज्झायं, भणता, गुणता, विचारता ज्ञान और ज्ञानवंत पुरुषों की अविनय आशातना की हो तो (इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो) तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।।

4. दर्शन सम्यक्त्व का पाठ

अरिहंतो महदेवो, जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो।
जिण-पण्णत्तं तत्तं, इअ सम्मत्तं मए गहियं।।1।।

1. काउस्सग्ग में इन सब पाठों में 'मिच्छा मि दुक्कडं' के स्थान पर 'आलोउं' कहें।

परमत्थ-संथवो वा, सुदिट्ठ-परमत्थ-सेवणा वा वि।
वावण्ण-कुदंसण-वज्जणा, य सम्मत्त-सद्दहणा ।।2।।

इअ सम्मत्तस्स पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं-संका, कंखा, वितिगिच्छा, परपासंड-पसंसा, परपासंड-संथवो।

इस प्रकार श्री समकित रत्न पदार्थ के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं-1. श्री जिन वचन में शंका की हो, 2. परदर्शन की आकांक्षा की हो, 3. धर्म के फल में सन्देह किया हो, 4. पर पाखण्डी की प्रशंसा की हो, 5. पर पाखण्डी का परिचय किया हो और मेरे सम्यक्त्व रूप रत्न पर मिथ्यात्व रूपी रज मेल लगा हो (इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो) तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

5-16. पन्द्रह कर्मादान सहित बारह व्रतों के अतिचार

1. **पहला स्थूल प्राणातिपात**-विरमण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं-1. रोषवश गाढ़ा बंधन बांधा हो 2. गाढ़ा घाव घाला हो 3. अवयव[1] का छेद किया हो, 4. अधिक भार भरा हो, 5. भत्त पाणी का विच्छेद किया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

1. अवयव चाम आदि का।

2. **दूजा स्थूल मृषावाद** विरमण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं-1. सहसाकार से किसी के प्रति कूड़ा आल (झूठा दोष) दिया हो, 2. एकान्त में गुप्त बातचीत करते हुए व्यक्तियों पर झूठा आरोप लगाया हो, 3. अपनी स्त्री का मर्म प्रकाशित किया हो[1], 4. मृषा उपदेश दिया हो, 5. कूड़ा लेख लिखा हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।
3. **तीजा स्थूल अदत्तादान** विरमण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं-1. चोर की चुराई हुई वस्तु ली हो, 2. चोर को सहायता दी हो, 3. राज्य के विरुद्ध काम किया हो, 4. कूड़ा तोल कूड़ा माप किया हो, 5. वस्तु में भेल संभेल किया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।
4. **चौथा स्थूल स्वदार संतोष परदार विवर्जन[2] रूप मैथुन** विरमण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं-1. इत्तरियपरिग्गहिया[3] से गमन किया हो, 2. अपरिग्गहिया[3] से गमन किया हो, 3. अनंग क्रीड़ा की हो, 4. पराये का विवाह नाता कराया हो, 5. काम भोग की तीव्र अभिलाषा की हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

---

1. स्त्रियाँ अपने पुरुष का मर्म प्रकाशित किया हो, बोलें।
2. स्त्रियाँ-स्वपति संतोष, परपुरुष विवर्जन बोलें।
3. इत्तरियपरिग्गहिया के स्थान पर स्त्रियाँ इत्तरियपरिग्गहिय तथा अपरिग्गहिया के स्थान पर अपरिग्गहिय बोलें।

5. **पाँचवाँ स्थूल परिग्रह** विरमण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं-1. खेत-वत्थु का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 2. हिरण्य-सुवर्ण का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 3. धन-धान्य का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 4. दोपद-चौपद का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 5. कुविय का परिमाण अतिक्रमण किया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

6. **छट्ठे दिशिव्रत** के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं-1. ऊँची, 2. नीची, 3. तिरछी दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 4. क्षेत्र बढ़ाया हो, 5. क्षेत्र का परिमाण भूल जाने से, पंथ का संदेह पड़ने पर आगे चला हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

7. **सातवाँ उपभोग परिभोग** परिमाण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं-पच्चक्खाण उपरान्त 1. सचित्त का आहार किया हो, 2. सचित्त प्रतिबद्ध का आहार किया हो, 3. अपक्व का आहार किया हो, 4. दुपक्व का आहार किया हो, 5. तुच्छौषधि का आहार किया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

पन्द्रह कर्मादान[1] जो श्रावक-श्राविका के जानने योग्य हैं किन्तु आचरण करने योग्य नहीं हैं, उनके विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं-**1. इंगालकम्मे, 2. वणकम्मे,** 3. साडीकम्मे, 4. भाडीकम्मे, 5. फोडीकम्मे, 6. दन्त-वाणिज्जे, 7. लक्खवाणिज्जे, 8. रसवाणिज्जे, 9. केस-**वाणिज्जे, 10. विसवाणिज्जे, 11. जंतपीलणकम्मे, 12. निलंछणकम्मे, 13. दवग्गिदावणया, 14. सरदह-तलाय-सोसणया, 15. असई-जण-पोसणया,** इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

8. **आठवें अनर्थदण्ड** विरमण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं-1. काम-विकार पैदा करने वाली कथा की हो, 2. भण्ड-कुचेष्टा की हो, 3. मुखरी वचन बोला हो, 4. अधिकरण[2] जोड़ रखा हो, 5. उपभोग-परिभोग अधिक बढ़ाया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

9. **नवमें सामायिक व्रत** के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं-1. मन, 2. वचन, 3. काया के अशुभ योग प्रवर्ताये हों, 4. सामायिक की स्मृति न रखी हो, 5. समय पूर्ण हुए बिना सामायिक पाली हो, इन अतिचारों में से

---

1. अधिक हिंसा वाले कार्यों से आजीविका चलाना कर्मादान है अथवा जिन संसाधनों से कर्मों का निरन्तर बन्ध होता हो उन्हें कर्मादान कहते हैं।
2. हिंसाकारी शस्त्र यानी हिंसा के साधन अधिकरण कहलाते हैं।

मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

10. **दसवें देशावकाशिक व्रत** के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं-1. नियमित सीमा के बाहर की वस्तु मँगवाई हो, 2. भिजवाई हो, 3. शब्द करके चेताया हो, 4. रूप दिखा करके अपने भाव प्रकट किये हों, 5. कंकर आदि फेंककर दूसरे को बुलाया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

11. **ग्यारहवें प्रतिपूर्ण पौषध व्रत** के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं-1. पौषध में शय्या संथारा न देखा हो या अच्छी तरह से न देखा हो, 2. प्रमार्जन न किया हो या अच्छी तरह से न किया हो, 3. उच्चार पासवण की भूमि को न देखी हो या अच्छी तरह से न देखी हो, 4. पूँजी न हो या अच्छी तरह से न पूँजी हो, 5. उपवास युक्त पौषध का सम्यक् प्रकार से पालन न किया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

12. **बारहवें अतिथि संविभाग व्रत** के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं-1. अचित्त वस्तु सचित्त पर रखी हो, 2. अचित्त वस्तु सचित्त से ढाँकी हो, 3. साधुओं को भिक्षा देने के समय को टाल कर भावना भायी हो, 4. आप सूझता होते हुए भी दूसरों से दान दिलाया हो, 5. मत्सर (ईर्ष्या) भाव से दान दिया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

17. संलेखना के पाँच अतिचार का पाठ

संलेखना के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं- (1) इस लोक के सुख की कामना की हो, (2) परलोक के सुख की कामना की हो, (3) जीवित रहने की कामना की हो, (4) मरने की कामना की हो, (5) कामभोग की कामना की हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।।

18. 99 अतिचारों का (समुच्चय) पाठ

इस प्रकार 14 ज्ञान के, 5 समकित के, 60 बारह व्रतों के, 15 कर्मादान के, 5 संलेखना के इन 99 अतिचारों में से किसी भी अतिचार का जानते, अजानते, मन, वचन, काया से सेवन किया हो, कराया हो, करते हुए को भला जाना हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान की साक्षी से जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।।

19. अठारह पाप स्थान का पाठ

अठारह पाप स्थान आलोउं-1. प्राणातिपात, 2. मृषावाद, 3. अदत्तादान, 4. मैथुन, 5. परिग्रह, 6. क्रोध, 7. मान, 8. माया, 9. लोभ, 10. राग, 11. द्वेष, 12. कलह, 13. अभ्याख्यान, 14. पैशुन्य, 15. परपरिवाद, 16. रति-अरति, 17. माया-मृषावाद, 18. मिथ्यादर्शन शल्य, इन 18 पाप स्थानों में से किसी का सेवन किया हो, कराया हो, करते हुए को भला जाना हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान की साक्षी से जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

फिर तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वन्दना करें, पहला सामायिक आवश्यक समाप्त हुआ।

दूसरा आवश्यक

दूसरे आवश्यक की आज्ञा है ऐसा कहकर 'लोगस्स का पाठ' प्रकट में बोलें। इसके बाद तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वन्दना करें। पहला सामायिक, दूसरा चउवीसत्थव, दो आवश्यक समाप्त हुए।

तीसरा आवश्यक

तीसरे आवश्यक की आज्ञा है कहकर दो बार निम्नलिखित पाठ से विधिवत् वन्दना करें।

20. इच्छामि खमासमणो का पाठ

इच्छामि खमासमणो! वंदिउं जावणिज्जाए निसीहियाए अणुजाणह मे मिउग्गहं, निसीहि, अहो कायं काय-संफासं खमणिज्जो भे! किलामो अप्पकिलंताणं बहुसुभेणं भे! दिवसो वइक्कंतो[1] जत्ता भे जवणि ज्जं च भे खामेमि खमासमणो, देवसियं[2] वइक्कमं आवस्सियाए पडिक्कमामि खमासमणाणं देवसिआए[3]

1-3. देवसिक प्रतिक्रमण में बोलना चाहिए-दिवसो वइक्कंतो, देवसियं वइक्कमं, देवसियाए आसायणाए, देवसियो अइयारो।

रात्रिक प्रतिक्रमण में बोलना चाहिए-राइ वइक्कंता, राइयं वइक्कमं, राइयाए आसायणाए, राइओ अइयारो।

पाक्षिक प्रतिक्रमण में बोलना चाहिए-पक्खो वइक्कंतो, पक्खियं वइक्कमं, पक्खियाए आसायणाए, पक्खिओ अइयारो।

चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में बोलना चाहिए-चाउम्मासो वइक्कंतो, चाउम्मासियं वइक्कमं, चाउम्मासियाए आसायणाए, चाउम्मासिओ अइयारो।

आसायणाए तित्तिसन्नयराए जं किंचि मिच्छाए, मण-दुक्कडाए, वय-दुक्कडाए, काय-दुक्कडाए कोहाए माणाए मायाए लोहाए सव्वकालियाए, सव्वमिच्छोवयाराए, सव्व धम्माइक्कमणाए आसायणाए जो मे देवसिओ[1] अइयारो कओ तस्स खमासमणो, पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि।

(**खमासमणो देने की विधि**–इच्छामि खमासमणो का पाठ प्रारम्भ कर जब निसीहि शब्द आवे तब दोनों घुटने खड़े कर उत्कटुक आसन से बैठे, घुटनों के बीच में दोनों हाथ जोड़े हुए ''निसीहि'' के पश्चात् 'अहो'-'कायं'-'काय'-ये तीन आवर्तन मस्तक नमाकर इस प्रकार दें-कमलमुद्रा में अञ्जलिबद्ध (हाथ जोड़कर) दोनों हाथों से गुरु-चरणों को स्पर्श करने के भाव से मंद स्वर से 'अ' अक्षर कहना, तत्पश्चात् अञ्जलिबद्ध हाथों को मस्तक पर लगाते हुए उच्च स्वर से 'हो' अक्षर कहना, यह पहला आवर्तन है। इसी प्रकार 'का·········यं' और 'का··········य' के शेष दो आवर्तन भी दिये जाते हैं।

'वइक्कंतो' के पश्चात् 'जत्ता भे', 'जवणि', 'ज्जं च भे'-ये तीन आवर्तन इस प्रकार दें-कमल-मुद्रा से अञ्जलि बाँधे हुए दोनों हाथों से गुरुचरणों को स्पर्श करने के भाव से मन्द स्वर में 'ज' अक्षर कहना चाहिए। पुनः हृदय के पास अञ्जलि लाते हुए मध्यम स्वर से 'त्ता' अक्षर कहना तथा फिर अपने मस्तक को छूते हुए उच्च स्वर से

1. सांवत्सरिक प्रतिक्रमण में बोलना चाहिए-संवच्छरो वइक्कंतो, संवच्छरियं वइक्कमं, संवच्छरियाए आसायणाए, संवच्छरिओ अइयारो।

'भे' अक्षर कहना चाहिए। यह प्रथम आवर्तन है। इसी पद्धति से 'ज···व···णि' और 'ज्जं···च···भे' ये शेष दो आवर्तन भी करने चाहिए। प्रथम खमासमणो के पाठ में उपर्युक्त छह तथा इसी प्रकार दूसरे खमासमणो के पाठ में भी छह, कुल बारह आवर्तन होते हैं।

फिर 'वइक्कमं' तक बैठे-बैठे बोलें। 'आवस्सियाए पडिक्कमामि' बोलने के साथ खड़े होवें तथा शेष सम्पूर्ण पाठ खड़े-खड़े बोलें। इसी प्रकार दूसरी बार भी 'खमासमणो' देवें किन्तु इसमें 'आवस्सियाए पडिक्कमामि' नहीं बोलें व 'वइक्कमं' शब्द बोलने के बाद खड़े न होवें, सम्पूर्ण पाठ बैठे-बैठे ही बोलें।)

फिर तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वन्दना करें। पहला सामायिक, दूसरा चउवीसत्थव, तीसरी वन्दना ये तीन आवश्यक समाप्त हुए।

चौथा आवश्यक

चौथे आवश्यक की आज्ञा है कहकर, खड़े-खड़े या बायाँ घुटना खड़ा करके प्रकट में निम्नलिखित पाठ बोलें-आगमे तिविहे, अरिहंतो महदेवो, 12 स्थूल, छोटी संलेखना, 99 अतिचारों का पाठ, अठारह पापस्थान, इच्छामि ठामि। इसके बाद निम्न पाठ बोलें।

21. तस्स सव्वस्स का पाठ

तस्स सव्वस्स देवसियस्स[1], अइयारस्स, दुब्भासिय-दुच्चिन्तिय-दुच्चिट्ठियस्स आलोयंतो पडिक्कमामि।

फिर तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वन्दना करें।

1. प्रातःकाल में राइयस्स, पक्खी के दिन पक्खियस्स, चौमासी के दिन चाउमासियस्स और संवत्सरी के दिन संवच्छरियस्स शब्द बोलें।

श्रावक सूत्र की आज्ञा

श्रावक सूत्र की आज्ञा है कहकर, दाहिना घुटना खड़ा करके बैठकर नवकार मंत्र तथा करेमि भंते का पाठ बोल कर निम्न पाठ बोलें।

22. चत्तारि मंगलं का पाठ

चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलि-पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरणं पवज्जामि, अरिहंते सरणं पवज्जामि, सिद्धे सरणं पवज्जामि, साहू सरणं पवज्जामि, केवलि-पण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि। अरिहन्तों का शरणा, सिद्धों का शरणा, साधुओं का शरणा, केवली प्ररूपित दया धर्म का शरणा।

चार शरणा दु:ख हरणा और न शरणा कोय।
जो भव्य प्राणी आदरे तो अक्षय अमर पद होय।।

इसके बाद में इच्छामि ठामि[1] व इच्छाकारेणं का पाठ बोलें। बाद में बैठे-बैठे ही **''व्रत अतिचार सहित बोलने की आज्ञा है'',** ऐसा बोलें। फिर आगमे तिविहे का पाठ बोल कर निम्न पाठ बोलें।

23. दंसण समत्त का पाठ

दंसण-समत्त-परमत्थ-संथवो वा, सुदिट्ठ-परमत्थ-सेवणा वा वि।
वावण्ण-कुदंसण-वज्जणा, य समत्त-सद्दहणा।।

---

1. इस पाठ के उच्चारण में 'इच्छामि ठामि काउस्सग्गं' के स्थान पर 'इच्छामि पडिक्कमिउं' कहें।

इअ सम्मत्तस्स पंच–अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं–1. संका, 2. कंखा, 3. वितिगिच्छा, 4. पर–पासंड–पसंसा, 5. परपासंड–संथवो, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।।

24–35. बारह व्रत अतिचार सहित

1. पहला अणुव्रत–थूलाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, त्रसजीव, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, जान के पहिचान के, संकल्प करके, उसमें सगे सम्बन्धी व स्व शरीर के भीतर में पीड़ाकारी, सापराधी को छोड़कर निरपराधी को आकुट्टी की बुद्धि से हनने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा ऐसे पहले स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत के पंच–अइयारा पेयाला जाणियव्वा, न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं–बंधे, वहे, छविच्छेए, अइभारे, भत्तपाण–विच्छेए, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।।
2. दूजा अणुव्रत–थूलाओ मुसावायाओ वेरमणं, कन्नालीए, गोवालीए, भोमालीए, णासावहारो, कूडसक्खिज्जे इत्यादि मोटा झूठ बोलने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा, एवं दूजा स्थूल मृषावाद विरमण व्रत के पंच–अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं–

सहस्सब्भक्खाणे, रहस्सब्भक्खाणे, सदारमंत-भेए[1], मोसोवएसे, कूडलेहकरणे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।।

3. तीजा अणुव्रत-थूलाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं, खात खनकर, गाँठ खोलकर, ताले पर कूँची लगाकर, मार्ग में चलते हुए को लूटकर, पड़ी हुई धणियाती मोटी वस्तु जानकर लेना इत्यादि मोटा अदत्तादान का पच्चक्खाण, सगे सम्बन्धी, व्यापार सम्बन्धी तथा पड़ी निर्भ्रमी वस्तु के उपरान्त अदत्तादान का पच्चक्खाण जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा एवं तीजा स्थूल अदत्तादान विरमण व्रत के पंच-अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं-तेनाहडे, तक्करप्पओगे, विरुद्ध-रज्जाइक्कमे, कूडतुल्ल-कूडमाणे, तप्पडिरूवगववहारे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।।

4. चौथा अणुव्रत-थूलाओ मेहुणाओ वेरमणं, सदार-संतोसिए अवसेस-मेहुणविहिं[2] पच्चक्खामि, जावज्जीवाए देव-देवी सम्बन्धी दुविहं तिविहेणं, न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा तथा मनुष्य तिर्यंच सम्बन्धी एगविहं एगविहेणं न करेमि, कायसा एवं चौथा स्थूल स्वदार

1. स्त्रियाँ 'सदारमंतभेए' के स्थान पर 'सपइ-मंत-भेए' बोलें।
2. स्त्री को 'सदार' के स्थान पर 'सपइ' व पूर्ण त्यागी को 'सदार-संतोसिए अवसेस-मेहुणविहिं' के स्थान पर 'सव्व-मेहुणविहिं' बोलना चाहिए।

संतोष, परदार[1] विवर्जन रूप मैथुन विरमण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं– इत्तरियपरिग्गहिया–गमणे, अपरिग्गहिया–गमणे[2], अनंगकीडा, परविवाह–करणे, कामभोगातिव्वाभिलासे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।।

5. पाँचवाँ अणुव्रत–थूलाओ परिग्गहाओ वेरमणं, खेत्त–वत्थु का यथा परिमाण, हिरण्ण–सुवण्ण का यथा परिमाण, धण–धण्ण का यथा परिमाण, दुप्पय–चउप्पय का यथा परिमाण, कुविय का यथा परिमाण एवं जो यथा परिमाण किया है उसके उपरान्त अपना करके परिग्रह रखने का पच्चक्खाण जावज्जीवाए एगविहं तिविहेणं न करेमि, मणसा, वयसा, कायसा एवं पाँचवाँ स्थूल परिग्रह विरमण व्रत के पंच–अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं–खेत्तवत्थुप्पमाणाइक्कमे, हिरण्ण–सुवण्ण–प्पमाणाइक्कमे, धणधण्णप्पमाणाइक्कमे, दुप्पय–चउप्प–यप्पमाणाइक्कमे, कुवियप्पमाणाइक्कमे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।।

6. छट्ठा दिशिव्रत–उड्ढदिसी का यथा परिमाण, अहोदिसी का यथा परिमाण, तिरियदिसी का यथा परिमाण एवं जो यथा परिमाण किया है उसके उपरान्त स्वेच्छा काया से

1. स्त्री को 'स्वदार' के स्थान पर 'स्वपति' तथा 'परदार' की जगह 'परपति' बोलना चाहिए।
2. स्त्री को 'इत्तरियपरिग्गहिया–गमणे' के स्थान पर 'इत्तरियपरिग्गहिय–गमणे' तथा 'अपरिग्गहिया–गमणे' के स्थान पर 'अपरिग्गहिय–गमणे' बोलना चाहिए।

आगे जाकर पाँच आस्रव सेवन का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए एगविहं[1] तिविहेणं न करेमि[1], मणसा, वयसा, कायसा एवं छट्ठे दिशिव्रत के पंच-अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं-उड्ढ दिसिप्पमाणाइक्कमे, अहोदिसिप्पमाणाइक्कमे, तिरिय-दिसिप्पमाणाइक्कमे, खित्तवुड्ढी, सइ-अंतरद्धा, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।।

7. सातवाँ व्रत-उपभोग परिभोगविहिं पच्चक्खायमाणे उल्लणियाविहि, दंतणविहि, फलविहि, अब्भंगणविहि, उवट्टणविहि, मज्जणविहि, वत्थविहि, विलेवणविहि, पुप्फ-विहि, आभरणविहि, धूवविहि, पेज्जविहि, भक्खण-विहि, ओदणविहि, सूपविहि, विगयविहि, सागविहि, महुरविहि, जीमणविहि, पाणियविहि, मुखवासविहि, वाहणविहि, उवाणहविहि, सयणविहि, सचित्तविहि, दव्वविहि इन 26 बोलों का यथा परिमाण किया है, इसके उपरान्त उपभोग-परिभोग वस्तु को भोग निमित्त से भोगने का पच्चक्खाण जावज्जीवाए एगविहं तिविहेणं न करेमि, मणसा, वयसा, कायसा एवं सातवाँ व्रत उपभोग परिभोग दुविहे पण्णत्ते तं जहा, भोयणाओ य कम्मओ य भोयणाओ समणोवासएणं पंच-अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं-

1. 'एगविहं' के स्थान पर 'दुविहं' और 'न करेमि' के स्थान पर 'न करेमि, न कारवेमि' भी बोलते हैं।

सचित्ताहारे, सचित्त-पडिबद्धाहारे, अप्पउली-ओसहि-भक्खणया, दुप्पउली-ओसहि-भक्खणया, तुच्छोसहि-भक्खणया कम्मओ य णं, समणोवासएणं पण्णरस-कम्मादाणाइं जाणियव्वाइं, न समायरियव्वाइं तं जहा ते आलोउं-1. इंगालकम्मे, 2. वणकम्मे, 3. साडीकम्मे, 4. भाडीकम्मे, 5. फोडीकम्मे, 6. दन्तवाणिज्जे, 7. लक्खवाणिज्जे, 8. रस-वाणिज्जे, 9. केसवाणिज्जे, 10. विसवाणिज्जे, 11. जंत-पीलणकम्मे, 12. निल्लंछ-णकम्मे, 13. दवग्गिदावणया, 14. सरदहतलाय-सोसणया, 15. असई-जण-पोसणया, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।।

8. आठवाँ अणट्ठादण्ड-विरमण व्रत चउव्विहे अणट्ठादंडे पण्णत्ते तं जहा-अवज्झाणायरिये, पमायायरिये, हिंसप्पयाणे, पावकम्मोवएसे एवं आठवाँ अणट्ठादण्ड सेवन का पच्चक्खाण, जिसमें आठ आगार-आए वा, राए वा, नाए वा, परिवारे वा, देवे वा, नागे वा, जक्खे वा, भूए वा, एत्तिएहिं आगारेहिं अण्णत्थ जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा एवं आठवाँ अणट्ठादण्ड विरमण व्रत के पंच-अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं-कंदप्पे, कुक्कुइए, मोहरिए, संजुत्ता-हिगरणे, उवभोगपरिभोगा-इरित्ते, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।।

9. नवमाँ सामायिक व्रत–सावज्जं जोगं पच्चक्खामि, जाव नियमं पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा, ऐसी मेरी सद्दहणा प्ररूपणा तो है सामायिक का अवसर आये, सामायिक करूँ तब फरसना करके शुद्ध होऊँ एवं नवमें सामायिक व्रत के पंच–अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं–मणदुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे, काय–दुप्पणिहाणे, सामाइयस्स सइ अकरणया, सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।।

10. दसवाँ देसावगासिक व्रत–दिन प्रति प्रभात से प्रारम्भ करके पूर्वादिक छहों दिशाओं में जितनी भूमिका की मर्यादा रखी है, उसके उपरान्त पाँच आस्रव सेवन निमित्त स्वेच्छा काया से आगे जाने तथा दूसरों को भेजने का पच्चक्खाण जाव अहोरत्तं दुविहं तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा तथा जितनी भूमिका की हद्द रखी है उसमें जो द्रव्यादि की मर्यादा की है, उसके उपरान्त उपभोग–परिभोग वस्तु को भोग निमित्त से भोगने का पच्चक्खाण जाव अहोरत्तं एगविहं तिविहेणं न करेमि, मणसा, वयसा, कायसा एवं दसवें देशावकाशिक व्रत के पंच–अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं–आणवणप्पओगे, पेसवणप्पओगे, सद्दाणुवाए, रूवाणुवाए, बहियापुग्गलपक्खेवे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।।

11. ग्यारहवाँ पडिपुण्ण पौषध व्रत–असणं, पाणं, खाइमं, साइमं का पच्चक्खाण, अबंभ सेवन का पच्चक्खाण, अमुकमणि सुवर्ण का पच्चक्खाण, मालावणग्ग–विलेवण का पच्चक्खाण, सत्थमूसलादिक सावज्जजोग सेवन का पच्चक्खाण, जाव अहोरत्तं पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा ऐसी मेरी सद्दहणा प्ररूपणा तो है, पौषध का अवसर आये, पौषध करूँ तब फरसना करके शुद्ध होऊँ एवं ग्यारहवाँ प्रतिपूर्ण पौषध व्रत के पंच–अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं–1. अप्पडिलेहिय–दुप्पडिलेहिय–सेज्जासंथारए, 2. अप्पमज्जियदुप्प–मज्जिय–सेज्जा–संथारए, 3. अप्पडि–लेहिय–दुप्पडि–लेहिय–उच्चार–पासवण–भूमि, 4. अप्पमज्जिय–दुप्पमज्जिय–उच्चार–पासवण–भूमि, 5. पोसहस्स सम्मं अणणुपालणया, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।।

12. बारहवाँ अतिथि संविभाग व्रत–समणे निग्गंथे फासुयएस–णिज्जेणं, असण–पाण–खाइम–साइम–वत्थ–पडिग्गह–कंबल–पायपुंछणेणं, पडिहारिय–, पीढ–फलग–सेज्जासंथारएणं, ओसह–भेसज्जेणं, पडिलाभेमाणे विहरामि, ऐसी मेरी सद्दहणा प्ररूपणा तो है, साधु–साध्वियों का योग मिलने पर निर्दोष दान दूँ, तब फरसना करके शुद्ध होऊँ एवं बारहवें अतिथि संविभाग

व्रत के पंच–अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं–सचित्त–निक्खेवणया, सचित्त–पिहणया, कालाइक्कमे, परववएसे, मच्छरियाए, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।।

फिर पालथी आसन से बैठकर बड़ी संलेखना का पाठ बोलें।

36. बड़ी संलेखना का पाठ

अह भंते ! अपच्छिम–मारणंतिय–संलेहणा, झूसणा, आराहणा, पौषधशाला पूँज पूँज कर, उच्चारपासवण भूमि पडिलेह पडिलेह कर, गमणागमणे पडिक्कम पडिक्कम कर, दर्भादिक संथारा संथार संथार कर, दर्भादिक संथारा दुरूह दुरूह कर, पूर्व तथा उत्तर दिशा सम्मुख पल्यंकादिक आसन से बैठ–बैठ कर, करयल–संपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि–कट्टु एवं वयासी–नमोत्थु णं अरिहंताणं भगवंताणं जाव संपत्ताणं, ऐसे अनन्त सिद्ध भगवान को नमस्कार करके, 'नमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं जाव संपाविउकामाणं' जयवन्ते वर्तमान काले महाविदेह क्षेत्र में विचरते हुए तीर्थङ्कर भगवान को नमस्कार करके अपने धर्माचार्य जी को नमस्कार करता हूँ। साधु प्रमुख चारों तीर्थों को खमा के, सर्व जीव राशि को खमाकर के, पहले जो व्रत आदरे हैं, उनमें जो अतिचार दोष लगे हैं, वे सर्व आलोच के, पडिक्कम करके, निंद के, नि:शल्य होकर के, सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि, सव्वं मुसावायं पच्चक्खामि, सव्वं अदिण्णादाणं पच्चक्खामि, सव्वं

मेहुणं पच्चक्खामि, सव्वं परिग्गहं पच्चक्खामि, सव्वं कोहं माणं जाव मिच्छादंसणसल्लं सव्वं अकरणिज्जं जोगं पच्चक्खामि, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि, मणसा, वयसा, कायसा, ऐसे अठारह पापस्थान पच्चक्ख के, सव्वं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, चउव्विहंपि आहारं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, ऐसे चारों आहार पच्चक्ख के जं पियं इमं सरीरं इट्ठं, कंतं, पियं, मणुण्णं, मणामं, धिज्जं, विसासियं, सम्मयं, अणुमयं, बहुमयं, भण्डकरण्डगसमाणं, रयणकरण्डगभूयं, मा णं सीयं, मा णं उण्हं, मा णं खुहा, मा णं पिवासा, मा णं वाला, मा णं चोरा, मा णं दंसमसगा, मा णं वाइयं, पित्तियं, कप्फियं, संभीमं सण्णिवाइयं विविहा रोगायंका परीसहा उवसग्गा फासा फुसंतु एवं पिय णं चरमेहिं उस्सासणिस्सासेहिं वोसिरामि त्ति कट्टु ऐसे शरीर को वोसिरा के कालं अणवकंखमाणे विहरामि, ऐसी मेरी सद्दहणा प्ररुपणा तो है, फरसना करूँ तब शुद्ध होऊँ, ऐसे अपच्छिम मारणंतिय संलेहणा झूसणा आराहणाए पंच-अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं-इहलोगासंसप्पओगे, परलोगासंसप्पओगे, जीवियासंसप्पओगे, मरणासंसप्पओगे, कामभोगासंसप्पओगे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।।

फिर खड़े होकर 18 पाप स्थान, इच्छामि ठामि[1] का पाठ बोल कर निम्नलिखित पाठ बोलें।

1. यहाँ भी 'इच्छामि ठामि काउस्सग्गं' के स्थान पर 'इच्छामि पडिक्कमिउं' कहें।

37. तस्स धम्मस्स का पाठ

तस्स धम्मस्स केवलिपण्णत्तस्स अब्भुट्ठिओमि आराहणाए, विरओमि विराहणाए तिविहेणं पडिक्कंतो वंदामि जिण-चउव्वीसं।

फिर दो बार इच्छामि खमासमणो के पाठ से विधिवत् वन्दना करें।

पाँच पदों की भाव वन्दना

पंचांग नमाकर पाँच पदों की भाव वन्दना की आज्ञा है कहकर निम्न दोहा बोलें।

प्रथम सात अक्षर पढ़ो, पाँच पढ़ो चित्त लाय।
सात, सात, नव अक्षरा, पढ़त पाप झड़ जाय।।

फिर नवकार मंत्र को प्रकट में बोलकर निम्नलिखित पाठों से भाव वन्दना करें।

38. पहले पद श्री अरिहंत भगवान, जघन्य बीस तीर्थङ्करजी उत्कृष्ट एक सौ साठ तथा एक सौ सित्तर देवाधिदेव जी उनमें वर्तमान काल में 20 विहरमानजी महाविदेह क्षेत्र में विचरते हैं। एक हजार आठ लक्षण के धरणहार, चौंतीस अतिशय पैंतीस वाणी कर के विराजमान, चौसठ इन्द्रों के वन्दनीय, पूजनीय, अठारह दोष रहित, बारह गुण सहित (1) अनन्त ज्ञान, (2) अनन्त दर्शन, (3) अनन्त चारित्र, (4) अनन्त बल वीर्य, (5) दिव्य ध्वनि, (6) भामण्डल, (7) स्फटिक सिंहासन, (8) अशोक वृक्ष, (9) कुसुम वृष्टि, (10) देव-

दुन्दुभि, (11) छत्र धरावें, (12) चँवर बिजावें, पुरुषाकार पराक्रम के धरणहार, ऐसे अढ़ाई द्वीप पन्द्रह क्षेत्र में विचरते हैं। जघन्य दो क्रोड़ केवली उत्कृष्ट नव क्रोड़ केवली, केवल ज्ञान, केवल दर्शन के धरणहार, सर्वद्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के जाननहार–

सवैया– **नमूँ श्री अरिहंत, कर्मों का किया अन्त।**
हुआ सो केवल वन्त, करुणा भण्डारी है।।1।।
अतिशय चौंतीसधार, पैंतीसवाणी उच्चार।
समझावे नर–नार, पर उपकारी है।।2।।
शरीर सुन्दरकार, सूरज सो झलकार।
गुण है अनन्त सार, दोष परिहारी है।।3।।
कहत है तिलोक रिख, मन वच काया करी।
लुली–लुली बारम्बार, वन्दना हमारी है।।4।।

ऐसे श्री अरिहन्त भगवान, दीनदयालजी महाराज, आपकी दिवस[1] सम्बन्धी अविनय आशातना की हो तो हे अरिहन्त भगवान! मेरा अपराध बारम्बार क्षमा करिये, मैं हाथ जोड़, मान मोड़, शीश नमाकर तिक्खुत्तो के पाठ से 1008 बार वन्दना नमस्कार करता हूँ।

तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेमि, वंदामि, नमंसामि, सक्कारेमि, सम्माणेमि, कल्लाणं, मंगलं, देवयं, चेइयं, पज्जुवासामि, मत्थएण वंदामि।

आप मांगलिक हो, आप उत्तम हो, हे स्वामिन्! हे नाथ! आपका इस भव, पर भव, भव भव में सदाकाल शरण होवे।

---

1. प्रात:काल में रात्रि संबंधी, पक्खी के दिन पक्खी सम्बन्धी, चौमासी के दिन चौमासी संबंधी और संवत्सरी के दिन संवत्सरी संबंधी बोलें।

39. दूजे पद श्री सिद्ध भगवान महाराज 14 प्रकारे पन्द्रह भेदे अनन्त सिद्ध हुए हैं। आठ कर्म खपाकर मोक्ष पहुँचे हैं। (1) तीर्थ सिद्ध, (2) अतीर्थ सिद्ध, (3) तीर्थङ्कर सिद्ध, (4) अतीर्थङ्कर सिद्ध, (5) स्वयं बुद्ध सिद्ध, (6) प्रत्येक बुद्ध सिद्ध, (7) बुद्ध बोधित सिद्ध, (8) स्त्रीलिंग सिद्ध, (9) पुरुषलिंग सिद्ध, (10) नपुंसकलिंग सिद्ध, (11) स्वलिंग सिद्ध, (12) अन्यलिंग सिद्ध, (13) गृहस्थलिंग सिद्ध, (14) एक सिद्ध, (15) अनेक सिद्ध।

जहाँ जन्म नहीं, जरा नहीं, मरण नहीं, भय नहीं, रोग नहीं, शोक नहीं, दुःख नहीं, दारिद्र्य नहीं, कर्म नहीं, काया नहीं, मोह नहीं, माया नहीं, चाकर नहीं, ठाकर नहीं, भूख नहीं, तृषा नहीं, ज्योत में ज्योत विराजमान सकल कार्य सिद्ध करके चौदह प्रकारे पन्द्रह भेदे अनन्त सिद्ध भगवन्त हुए हैं जो-(1) अनन्त ज्ञान, (2) अनन्त दर्शन, (3) अव्याबाध सुख, (4) क्षायिक समकित, (5) अटल अवगाहना, (6) अमूर्त, (7) अगुरु-लघु, (8) अनन्त आत्म सामर्थ्य, ये आठ गुण कर के सहित हैं।

सवैया- **सकल करम टाल, वश कर लियो काल।**
मुगती में रह्या माल, आत्मा को तारी है।।1।।
देखत सकल भाव, हुआ है जगत् राव।
सदा ही क्षायिक भाव, भये अविकारी है।।2।।

अचल अटल रूप, आवे नहीं भव कूप।
अनूप स्वरूप ऊप, ऐसे सिद्ध धारी हैं।।3।।
कहत हैं तिलोक रिख, बताओ ए वास प्रभू।
सदा ही उगंते सूर[1], वन्दना हमारी है।।4।

ऐसे श्री सिद्ध भगवान, दीनदयालजी महाराज, आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना की हो तो हे सिद्ध भगवान! मेरा अपराध बारम्बार क्षमा करिये, मैं हाथ जोड़, मान मोड़, शीश नमाकर तिक्खुत्तो के पाठ से 1008 बार वंदना नमस्कार करता हूँ।

तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेमि, वंदामि, नमंसामि, सक्कारेमि, सम्माणेमि, कल्लाणं, मंगलं, देवयं, चेइयं, पज्जुवासामि, मत्थएण वंदामि।

आप मांगलिक हो, आप उत्तम हो, हे स्वामिन्! हे नाथ! आपका इस भव, पर भव, भव भव में सदाकाल शरण होवे।

40. तीजे पद श्री आचार्य जी महाराज 36 गुण करके विराजमान, पाँच महाव्रत पाले, पाँच आचार पाले, पाँच इन्द्रियाँ जीते, चार कषाय टाले, नववाड़ सहित शुद्ध ब्रह्मचर्य पाले, पाँच समिति तीन गुप्ति शुद्ध आराधें। ये 36 गुण करके सहित हैं। आठ सम्पदा-1. आचार सम्पदा, 2. श्रुत सम्पदा, 3. शरीर सम्पदा, 4. वचन सम्पदा, 5. वाचना सम्पदा, 6. मति सम्पदा, 7. प्रयोगमति सम्पदा और 8. संग्रह परिज्ञा सम्पदा सहित हैं।

1. सायंकाल के समय ''सदा ही सायंकाल बोलें।''

सवैया– गुण है छत्तीस पूर, धरत धरम उर।
मारत करम क्रूर, सुमति विचारी है।।1।।
शुद्ध सो आचारवन्त, सुन्दर है रूप कंत।
भणिया सब ही सिद्धांत, वाचणी सुप्यारी है।।2।।
अधिक मधुर वेण, कोइ नहीं लोपे केण।
सकल जीवों का सेण, कीरति अपारी है।।3।।
कहत हैं तिलोक रिख, हितकारी देत सीख।
ऐसे आचाराज जी को, वन्दना हमारी है।।4।।

ऐसे श्री आचार्य जी महाराज ! न्याय पक्षी, भद्रिक परिणामी, परम पूज्य, कल्पनीय, अचित्त वस्तु के ग्रहणहार, सचित्त के त्यागी, वैरागी, महागुणी, गुणों के अनुरागी, सौभागी हैं। ऐसे श्री आचार्य जी महाराज आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना की हो तो हे आचार्य जी महाराज ! मेरा अपराध बारम्बार क्षमा करिए। मैं हाथ जोड़, मान मोड़ शीश नमाकर तिक्खुत्तो के पाठ से 1008 बार वन्दना नमस्कार करता हूँ। **तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेमि, वंदामि, नमंसामि, सक्कारेमि, सम्माणेमि, कल्लाणं, मंगलं, देवयं, चेइयं, पज्जुवासामि, मत्थएण वंदामि।।**

आप मांगलिक हो, आप उत्तम हो, हे स्वामिन् ! हे नाथ! आपका इस भव, पर भव, भव भव में सदाकाल शरण होवे।

41. चौथे पद श्री उपाध्याय जी महाराज 25 गुण करके विराजमान, ग्यारह अंग, बारह उपांग, चरण सत्तरी, करण सत्तरी ये पच्चीस

गुण करके सहित हैं, ग्यारह अंग का पाठ अर्थ सहित सम्पूर्ण जाने, चौदह पूर्व के पाठक और बत्तीस सूत्रों के जानकार हैं–

ग्यारह अंग–आचारांग, सूयगडांग, ठाणांग, समवायांग, भगवती, ज्ञाताधर्मकथा, उवासगदसा, अंतगडदसा, अणुत्तरो-ववाइय, प्रश्नव्याकरण, विपाक सूत्र।

बारह उपांग–उववाई, रायप्पसेणी, जीवाजीवाभिगम, पन्नवणा, जम्बूदीवपन्नत्ती, चन्दपन्नत्ती, सूरपन्नत्ती, निरयावलिया, कप्पवडंसिया, पुप्फिया, पुप्फचूलिया, वण्हिदसा।

चार मूल सूत्र–उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, नन्दीसूत्र और अनुयोगद्वार सूत्र।

चार छेद–दशाश्रुत स्कन्ध, वृहत्कल्प, व्यवहार सूत्र, निशीथ सूत्र और

बत्तीसवाँ आवश्यक सूत्र–तथा अनेक ग्रन्थों के जानकार, सात नय, चार निक्षेप, निश्चय, व्यवहार, चार प्रमाण आदि स्वमत तथा अन्यमत के जानकार। मनुष्य या देवता कोई भी विवाद में जिनको छलने में समर्थ नहीं, जिन नहीं पण जिन सरीखे, केवली नहीं पण केवली सरीखे हैं।

सवैया– **पढ़त इग्यारह अंग, कर्मों से करे जंग।**
पाखंडी को मान भंग, करण हुशियारी है।।1।।
चवदे पूर्वधार, जानत आगम सार।
भवियन के सुखकार, भ्रमता निवारी है।।2।।
पढ़ावे भविक जन, स्थिर कर देत मन।
तप करि तावे तन, ममता को मारी है।।3।।

कहत है तिलोक रिख, ज्ञान भानु परतिख।
ऐसे उपाध्याय जी को, वन्दना हमारी है ।।4 ।।

ऐसे श्री उपाध्याय जी महाराज मिथ्यात्व रूप अन्धकार के मेटणहार, समकित रूप उद्योत के करणहार, धर्म से डिगते प्राणी को स्थिर करने वाले, सारए, वारए, धारए इत्यादि अनेक गुण करके सहित हैं। ऐसे श्री उपाध्यायजी महाराज आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना की हो तो, हे उपाध्याय जी महाराज ! मेरा अपराध बारम्बार क्षमा करें। मैं हाथ जोड़, मान मोड़, शीश नमाकर तिक्खुत्तो के पाठ से 1008 बार वन्दना नमस्कार करता हूँ।

तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेमि, वंदामि, नमंसामि, सक्कारेमि, सम्माणेमि, कल्लाणं, मंगलं, देवयं, चेइयं, पज्जुवासामि, मत्थएण वंदामि ।।

आप मांगलिक हो, आप उत्तम हो, हे स्वामिन् ! हे नाथ! आपका इस भव, पर भव, भव भव में सदा काल शरण होवे।

42. पाँचवें पद 'नमो लोए सव्व साहूणं' अढ़ाई द्वीप पन्द्रह क्षेत्र रूप लोक के विषय में सर्व साधुजी महाराज जघन्य दो हजार क्रोड़, उत्कृष्ट नव हजार क्रोड़ जयवन्ता विचरें। पाँच महाव्रत पाले, पाँच इन्द्रिय जीते, चार कषाय टाले, भाव सच्चे, करण सच्चे, जोग सच्चे, क्षमावंत, वैराग्य वंत, मन समाधारणया, वय समाधारणया, काय समाधारणया, नाण सम्पन्ना, दंसण सम्पन्ना, चारित्त सम्पन्ना, वेदनीय समाअहियासन्निया, मारणंतिय

समाअहियासन्निया ऐसे सत्ताईस गुण करके सहित हैं। पाँच आचार पाले, छहकाय की रक्षा करे, सात भय त्यागे, आठ मद छोड़े, नववाड़ सहित शुद्ध ब्रह्मचर्य पाले, दस प्रकारे यति धर्म धारे, बारह भेदे तपस्या करे, सतरह भेदे संयम पाले, अठारह पापों को त्यागे, बाईस परिषह जीते, तीस महामोहनीय कर्म निवारे, तैंतीस आशातना टाले, बयालीस दोष टाल कर आहार पानी लेवे, सैंतालीस दोष टाल कर भोगे, बावन अनाचार टाले, तेड़िया (बुलाये) आवे नहीं, नेतीया जीमे नहीं, सचित्त के त्यागी, अचित्त के भोगी, लोच करे, नंगे पैर चले इत्यादि कायक्लेश और मोह ममता रहित हैं।

सवैया– **आदरी संयम भार, करणी करे अपार।**
समिति गुप्तिधार, विकथा निवारी है।।1।।
जयणा करे छः काय, सावद्य न बोले वाय।
बुझाय कषाय लाय, किरिया भण्डारी है।।2।।
ज्ञान भणे आठों याम, लेवे भगवन्त नाम।
धरम को करे काम, ममता कूँ मारी है।।3।।
कहत है तिलोक रिख, करमों को टाले विख।
ऐसे मुनिराज ताकूँ, वन्दना हमारी है।।4।।

ऐसे मुनिराज महाराज आपकी दिवस संबंधी अविनय आशातना की हो तो हे मुनिराज महाराज ! मेरा अपराध बारम्बार क्षमा करिये। मैं हाथ जोड़, मान मोड़, शीश नमाकर तिक्खुत्तो के पाठ से 1008 बार वन्दना नमस्कार करता हूँ।

तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेमि, वंदामि, नमंसामि, सक्कारेमि, सम्माणेमि, कल्लाणं, मंगलं, देवयं, चेइयं, पज्जुवासामि, मत्थएण वंदामि ।।

आप मांगलिक हो, आप उत्तम हो, हे स्वामिन् ! हे नाथ ! आपका इस भव, पर भव, भव भव में सदा काल शरण होवे।

दोहा

सागर में पाणी घणों, गागर में न समाय।
पाँचों पदों में गुण घणा, माँ सू कह्यो न जाय ।।

इसके बाद सीधे बैठ कर अग्रलिखित पाठ बोलें।

43. अनन्त चौबीसी का पाठ

अनन्त चौबीसी जिन नमूँ, सिद्ध अनन्ता क्रोड़।
केवल ज्ञानी गणधरा, वन्दूँ बे कर जोड़ ।।1 ।।

दोय क्रोड़ केवल धरा, विहरमान जिन बीस।
सहस्र युगल क्रोड़ी नमूँ, साधु नमूँ निश दीस ।।2 ।।

धन साधु धन साध्वी, धन धन है जिन-धर्म।
ये सुमर्या पातक झरे, टूटे आठों कर्म ।।3 ।।

अरिहन्त सिद्ध समरूँ सदा, आचारज उपाध्याय।
साधु सकल के चरण को, वन्दूँ शीश नमाय ।।4 ।।

अँगुष्ठे अमृत बसे, लब्धि तणा भण्डार।
श्री गुरु गौतम सुमरिये, वांछित फल दातार ।।5 ।।

इसके बाद खड़े होकर अग्रलिखित पाठ बोलें।

44. आयरिय उवज्झाए का पाठ

आयरिय-उवज्झाए, सीसे साहम्मिए कुल-गणे य।
जे मे केइ कसाया, सव्वे तिविहेणं खामेमि ।।1 ।।

सव्वस्स समण-संघस्स, भगवओ अंजलिं करिअ सीसे।
सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयं पि ।।2 ।।

सव्वस्स जीव-रासिस्स, भावओ धम्मं निहिय नियचित्तो।
सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयं पि ।।3 ।।

45. अढ़ाई द्वीप पन्द्रह क्षेत्र का पाठ

ऐसे अढ़ाई द्वीप पन्द्रह क्षेत्र में तथा बाहर, श्रावक-श्राविका दान देवें, शील पाले, तपस्या करे, शुद्ध भावना भावे, संवर करे, सामायिक करे, पौषध करे, प्रतिक्रमण करे, तीन मनोरथ चिन्तवे, चौदह नियम चितारे, जीवादि नव पदार्थ जाने, ऐसे श्रावक के इक्कीस गुण करके युक्त, एक व्रतधारी जाव बारह व्रतधारी, भगवन्त की आज्ञा में विचरें ऐसे बड़ों से हाथ जोड़, पैर पड़कर, क्षमा माँगता हूँ। आप क्षमा करें, आप क्षमा करने योग्य हैं और शेष सभी को खमाता हूँ।

46. चौरासी लाख जीव योनि का पाठ

सात लाख पृथ्वी काय, सात लाख अप्काय, सात लाख तेऊ काय, सात लाख वायु काय, दस लाख प्रत्येक वनस्पति काय, चौदह लाख साधारण वनस्पति काय, दो लाख बेइन्द्रिय, दो लाख तेइन्द्रिय, दो लाख चउरिन्द्रिय, चार लाख देवता, चार लाख नारकी, चार लाख तिर्यंच पंचेन्द्रिय, चौदह लाख मनुष्य, ऐसे चार गति चौबीस दण्डक, चौरासी लाख जीव योनि में सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त जीवों में से किसी जीव का हालते, चालते, उठते, बैठते,

सोते जागते, हनन किया हो, हनन कराया हो, हनताँ प्रति अनुमोदन किया हो, छेदा हो, भेदा हो, किलामना उपजाई हो तो मन वचन काया करके (18,24,120) अठारह लाख चौबीस हजार एक सौ बीस प्रकारे जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।।

47. क्षमापना-पाठ

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ति मे सव्व भूएसु, वेरं मज्झं न केणई ।।1 ।।
एवमहं आलोइय-निन्दिय-गरिहिय-दुगुंछियं सम्मं ।
तिविहेणं पडिक्कंतो, वंदामि जिण-चउव्वीसं ।।2 ।।

इसके बाद अठारह पाप स्थान का पाठ बोलें। फिर तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वंदना करें। पहला सामायिक, दूसरा चउवीसत्थव, तीसरी वंदना, चौथा प्रतिक्रमण ये चार आवश्यक समाप्त हुए।

पाँचवाँ आवश्यक

पाँचवें आवश्यक की आज्ञा है कहकर, निम्न पाठ बोलें।

48. प्रायश्चित्त का पाठ

देवसिय[1]-पायच्छित्त-विसोहणत्थं करेमि काउस्सग्गं।

इसके बाद नवकार मंत्र, करेमि भंते, इच्छामि ठामि और तस्सउत्तरी का पाठ झाणेणं तक बोल कर 'चार लोगस्स[2] का काउस्सग्ग' ऐसा बोलकर अप्पाणं वोसिरामि कहने के साथ ही काउस्सग्ग करें।

1. प्रात:काल में राइय, पक्खी को पक्खिय, चौमासी को चाउम्मासियं और संवत्सरी को संवच्छरिय बोलें।
2. देवसिय व राइय को 4, पक्खी को 8, चौमासी को 12, संवत्सरी को 20 लोगस्स का काउस्सग्ग करें।

फिर काउस्सग्ग पूर्ण होने पर 'णमो अरिहंताणं' कह कर काउस्सग्ग पारें। कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ बोलें फिर एक लोगस्स प्रकट व दो बार सविधि इच्छामि खमासमणो के पाठ से वन्दना करें। इसके बाद तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वन्दना करें। पहला सामायिक, दूसरा चउवीसत्थव, तीसरी वन्दना, चौथा प्रतिक्रमण, पाँचवाँ कायोत्सर्ग ये पाँच आवश्यक समाप्त हुए।

छठा आवश्यक

छठे आवश्यक की आज्ञा है कहकर, यदि गुरुदेव हों तो उनसे, वे न हों तो बड़े श्रावक जी से पच्चक्खाण करें अन्यथा स्वयं करें।

49. समुच्चय पच्चक्खाण का पाठ

गंठिसहियं, मुट्ठिसहियं, नमुक्कारसहियं, पोरिसियं, साड्ढ –पोरिसियं, तिविहंपि चउविहंपि आहारं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अपनी–अपनी धारणा प्रमाणे पच्चक्खाण, अन्नत्थऽ–णाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्व समाहिवत्ति–यागारेणं वोसिरामि।[1]

पच्चक्खाण लेने के बाद निम्न पाठ बोलें।

50. अन्तिम पाठ

पहला सामायिक, दूसरा चउवीसत्थव, तीसरी वन्दना, चौथा प्रतिक्रमण, पाँचवाँ काउस्सग्ग और छट्ठा प्रत्याख्यान इन 6 आवश्यकों में अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार जानते अजानते कोई दोष लगा हो तथा पाठ उच्चारण करते समय काना, मात्रा, अनुस्वार, पद,

1. स्वयं पच्चक्खाण करें तो 'वोसिरामि' दूसरों को करावें तो 'वोसिरे–वोसिरे' बोलें।

अक्षर, ह्रस्व, दीर्घ, न्यूनाधिक, विपरीत पढ़ने में आया हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान की साक्षी से देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।।

मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण, अव्रत का प्रतिक्रमण, प्रमाद का प्रतिक्रमण, कषाय का प्रतिक्रमण, अशुभ योग का प्रतिक्रमण इन पाँच प्रतिक्रमणों में से कोई प्रतिक्रमण नहीं किया हो या अविधि से किया हो तथा ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप सम्बन्धी कोई दोष लगा हो तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।।

गये काल का प्रतिक्रमण, वर्तमान काल की सामायिक, आगामी काल के पच्चक्खाण जो भव्य जीव करते हैं, कराते हैं, करने वाले का अनुमोदन करते हैं उन महापुरुषों को धन्य है, धन्य है।

सम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्था, ये पाँच व्यवहार समकित के लक्षण हैं, इनको मैं धारण करता हूँ। देव अरिहन्त, गुरु निर्ग्रन्थ, केवली भाषित दयामय धर्म ये तीन तत्त्व सार, संसार असार भगवन्त महाराज आपका मार्ग सच्चं, सच्चं, सच्चं थवथुई मंगलं।

दोहा

आगे आगे दव बले, पीछे हरिया होय।
बलिहारी उस वृक्ष की, जड़ काट्याँ फल होय ।।

इसके बाद बायाँ घुटना खड़ा करके दो बार नमोत्थुणं का पाठ बोलें, फिर तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वन्दना करें।

प्रतिक्रमण पूर्ण होने पर स्वधर्मी भाई परस्पर क्षमायाचना करें। इसके बाद चौबीसी, स्तवन आदि बोलें।

।। सविधि प्रतिक्रमण सूत्र समाप्त ।।

प्रतिक्रमण की विधि

सर्वप्रथम तिक्खुत्तो के पाठ से वन्दना करें।

1. **चउवीसत्थव की आज्ञा**–नवकार मंत्र, इच्छाकारेणं, तस्सउत्तरी, एक लोगस्स के पाठ का काउस्सग्ग करें, कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ, एक लोगस्स प्रकट, दो बार नमोत्थुणं, तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वन्दना।
2. **प्रतिक्रमण ठाने (करने) की आज्ञा**–इच्छामि णं भंते, नवकार मन्त्र, तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वन्दना।
3. **प्रथम आवश्यक की आज्ञा**–करेमि भंते, इच्छामि ठामि, तस्स उत्तरी, 99 अतिचारों का काउस्सग्ग, (काउस्सग्ग में आगमे तिविहे, अरिहंतो महदेवो, बारह स्थूल, छोटी संलेखना, 99 अतिचारों के समुच्चय का पाठ, अठारह पापस्थान, इच्छामि ठामि का चिन्तन करें) कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ, तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वन्दना।
4. **दूसरे आवश्यक की आज्ञा**–लोगस्स का पाठ, तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वन्दना।
5. **तीसरे आवश्यक की आज्ञा**–इच्छामि खमासमणो के पाठ से विधिसहित दो बार वन्दना, तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वन्दना।
6. **चौथे आवश्यक की आज्ञा**–

   (अ) आगमे तिविहे, अरिहंतो महदेवो, बारह स्थूल, छोटी

संलेखना, 99 अतिचारों के समुच्चय का पाठ, अठारह पापस्थान, इच्छामि ठामि, तस्स सव्वस्स का पाठ, तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वन्दना।

(ब) **श्रावक सूत्र जी की आज्ञा**–नवकार मंत्र, करेमि भंते, चत्तारि मंगलं, इच्छामि ठामि, इच्छाकारेणं, आगमे तिविहे, दंसण समकित, बारह व्रत, बड़ी संलेखना (पालथी लगाकर), अठारह पापस्थान, इच्छामि ठामि, तस्स धम्मस्स, इच्छामि खमासमणो के पाठ से विधिवत् दो बार वन्दना।

(स) **पाँच पदों की वन्दना**–नवकार मंत्र, पाँचों पद, अनन्त चौबीसी, आयरिय उवज्झाए, अढ़ाई द्वीप का पाठ, चौरासी लाख जीवयोनि का पाठ, क्षमापना पाठ, अठारह पापस्थान, तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वन्दना।

7. **पाँचवें आवश्यक की आज्ञा**–प्रायश्चित्त का पाठ, नवकार मंत्र, करेमि भंते, इच्छामि ठामि, तस्सउत्तरी, लोगस्स का (सामान्य दिनों में 4, पक्खी को 8, चौमासी को 12 तथा संवत्सरी को 20 लोगस्स का) काउस्सग्ग करें, कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ एवं लोगस्स प्रकट में, इच्छामि खमासमणो के पाठ से विधिवत् दो बार वन्दना, तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वन्दना।

8. **छट्ठे आवश्यक की आज्ञा**–समुच्चय पच्चक्खाण का पाठ, प्रतिक्रमण समुच्चय (अन्तिम पाठ), नमोत्थु णं दो बार, तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वन्दना।

❑❑❑

सामायिक सूत्र-अर्थ

गुरु वन्दना सूत्र

तिक्खुत्तो	तीन बार।
आयाहिणं	स्वयं के दाहिनी ओर (अपने दोनों हाथों को जोड़कर मस्तक पर रखकर अपने स्वयं के दाहिने (Right) कान की ओर से ले जाते हुए गले के पास से बायें कान की ओर ऊपर ले जाकर पुन: मस्तक के बीच में लाना, आवर्तन है।
पयाहिणं	प्रदक्षिणा।
करेमि	करता हूँ।
वंदामि	वन्दना (गुणगान-स्तुति) करता हूँ।
नमंसामि	नमस्कार करता हूँ। (यहाँ पर माथा जमीन पर लगायें)
सक्कारेमि	सत्कार करता हूँ।
सम्माणेमि	सम्मान देता हूँ। (क्योंकि)
कल्लाणं	आप कल्याण रूप हैं।
मंगलं	आप मंगल रूप हैं।
देवयं	आप धर्ममय देव रूप हैं।
चेइयं	ज्ञानवान अर्थात् ज्ञान से शिष्यों के चित्त को प्रसन्न करने वाले हो। (इसलिए)
पज्जुवासामि	(मैं) आपकी उपासना करता हूँ, (व)
मत्थएण	मस्तक झुकाकर।
वंदामि	वन्दना (नमस्कार) करता हूँ।

नवकार महामन्त्र

णमो अरिहंताणं	अरिहंत भगवन्तों को नमस्कार हो।
णमो सिद्धाणं	सिद्ध भगवंतों को नमस्कार हो।
णमो आयरियाणं	आचार्यों को नमस्कार हो।
णमो उवज्झायाणं	उपाध्यायों को नमस्कार हो।
णमो लोए सव्वसाहूणं	लोक में सब साधुओं को नमस्कार हो।
एसो	यह।
पंच-	पाँच अर्थात् पाँचों पदों को किया गया।
णमोक्कारो	नमस्कार।
सव्व-पावप्पणासणो	सब पापों का नाश करने वाला है।
मंगलाणं च सव्वेसिं	और सभी मंगलों में।
पढमं हवइ मंगलं	प्रथम (प्रधान-सर्वोत्कृष्ट-सर्वोत्तम) मंगल है।

ईर्यापथिक सूत्र

इच्छाकारेणं संदिसह भगवं!	हे भगवान! इच्छापूर्वक आज्ञा दीजिए (क्योंकि मेरी इच्छा है कि मैं)।
इरियावहियं पडिक्कमामि	मार्ग में आने-जाने सम्बन्धी क्रिया का प्रतिक्रमण करूँ।
इच्छं	आज्ञा मिलने पर साधक बोलता है कि आपकी आज्ञा स्वीकार।
इच्छामि	चाहता हूँ।
पडिक्कमिउं	निवृत्त होना (प्रतिक्रमण करना)।

इरियावहियाए	ईर्या (आने-जाने का) पथ सम्बन्धी।
विराहणाए	विराधना से।
गमणागमणे	जाने व आने में।
पाणक्कमणे	प्राणी के दबने से।
बीयक्कमणे	बीज के दबने से।
हरियक्कमणे	हरी (वनस्पति) के दबने से।
ओसा	ओस का पानी।
उत्तिंग	कीड़ियों के बिल।
पणग	पाँच प्रकार की काई (पाँच रंग की काई)।
दग	सचित्त पानी।
मट्टी	सचित्त मिट्टी।
मक्कडा संताणा	मकड़ी के जाले को।
संकमणे	कुचल जाने से।
जे मे जीवा विराहिया	जो मेरे द्वारा जीवों की विराधना हुई अथवा जो मैंने जीवों की विराधना की।
एगिंदिया	(उन) एक इंद्रिय वाले।
बेइंदिया	दो इंद्रियों वाले।
तेइंदिया	तीन इंद्रियों वाले।
चउरिंदिया	चार इन्द्रियों वाले।
पंचिंदिया	पाँच इन्द्रियों वाले जीवों को।
अभिहया	सामने आते हुए को ठेस पहुँचाई हो।
वत्तिया	धूल आदि से ढँके हो।
लेसिया	भूमि आदि पर रगड़े-मसले हों।

संघाइया	इकट्ठे किये हों।
संघट्टिया	पीड़ा पहुँचे जैसे गाढ़े छुए हों।
परियाविया	परिताप (कष्ट) पहुँचाया हो।
किलामिया	खेद उपजाया हो।
उद्दविया	हैरान किया हो।
ठाणाओ ठाणं संकामिया	एक स्थान से दूसरे स्थान पर रखे हों।
जीवियाओ ववरोविया	जीवन (प्राणों) से रहित किया हो।
तस्स मिच्छा मि दुक्कडं	वह मेरा पाप मिथ्या हो (निष्फल हो)।

आत्म शुद्धि सूत्र

तस्स	उस (दूषित आत्मा) को।
उत्तरीकरणेणं	उत्कृष्ट (शुद्ध) बनाने के लिए।
पायच्छित्तकरणेणं	प्रायश्चित्त करने के लिए।
विसोहिकरणेणं	विशेष शुद्धि करने के लिए।
विसल्लीकरणेणं	शल्य रहित करने के लिए।
पावाणं कम्माणं	पाप कर्मों का।
निग्घायणट्ठाए	नाश करने के लिए।
ठामि काउस्सग्गं	कायोत्सर्ग करता हूँ। अर्थात् शरीर से ममता हटाता हूँ–काया के व्यापारों का त्याग करता हूँ।
अन्नत्थ	इन निम्नोक्त क्रियाओं को छोड़कर।
ऊससिएणं	(ऊँचा) श्वास लेने से।
नीससिएणं	(नीचा) श्वास छोड़ने से।

खासिएणं	खाँसी आने से।
छीएणं	छींक आने से।
जंभाइएणं	उबासी (जम्हाई) आने से।
उड्डुएणं	डकार आने से।
वाय-निसग्गेणं	अधो-वायु निकलने से।
भमलीए	चक्कर आने से।
पित्त-मुच्छाए	पित्त के कारण मूर्छित्त होने से।
सुहुमेहिं अंग-संचालेहिं	सूक्ष्म रूप से अंग हिलने से।
सुहुमेहिं खेल-संचालेहिं	सूक्ष्म रूप से कफ का संचार होने से।
सुहुमेहिं दिट्ठि-संचालेहिं	सूक्ष्म रूप से दृष्टि का संचार होने से अर्थात् नेत्र फड़कने से।
एवमाइएहिं आगारेहिं	इस प्रकार इत्यादि आगारों से।
अभग्गो अविराहिओ	अभग्न (अखण्ड) अविराधित।
हुज्ज मे काउस्सग्गो	मेरा कायोत्सर्ग हो।
जाव अरिहंताणं भगवंताणं	जब तक अरिहंत भगवान को।
णमोक्कारेणं ण पारेमि	नमस्कार करके (इस कायोत्सर्ग को) नहीं पालूँ।
ताव कायं	तब तक शरीर को।
ठाणेणं	स्थिर रख कर।
मोणेणं	मौन धरकर (रख कर)।
झाणेणं	मन को एकाग्र करने के साथ ही।
अप्पाणं वोसिरामि	अपनी आत्मा को पाप कर्मों से अलग करता हूँ अर्थात् पापात्मा को छोड़ता हूँ।

लोगस्स (तीर्थङ्कर स्तुति) सूत्र

लोगस्स उज्जोयगरे	लोक में प्रकाश (उद्योत) करने वाले।
धम्म-तित्थयरे	धर्मतीर्थ की स्थापना करने वाले ''धर्म तीर्थङ्कर'' (चतुर्विध संघ के संस्थापक)।
जिणे	राग द्वेष के विजेता जिनेश्वर।
अरिहंते कित्तइस्सं	(ऐसे) अरिहंतों का कीर्त्तन (स्तुति)।
चउवीसंपि केवली	सभी चौबीसों तीर्थङ्करों की।
उसभमजियं च वंदे	ऋषभदेवजी व अजितनाथजी को वन्दना करता हूँ।
संभवमभिणंदणं च	सम्भवनाथजी व अभिनन्दनजी को।
सुमइं च	सुमति नाथ जी को और।
पउमप्पहं सुपासं	पद्मप्रभजी, सुपार्श्वनाथजी को।
जिणं च	और जिनेश्वर।
चंदप्पहं वंदे	चन्द्रप्रभ को वन्दना करता हूँ।
सुविहिं च पुप्फदंतं	सुविधिनाथजी जिनका दूसरा नाम पुष्पदंत जी है उनको तथा
सीयल-सिज्जंस-	शीतलनाथजी, श्रेयांसनाथजी को।
वासुपुज्जं च	और वासुपूज्यजी को व
विमलमणंतं च जिणं	विमलनाथजी और अनन्तनाथजी जिनेश्वर को एवं
धम्मं संतिं च वंदामि	धर्मनाथजी और शान्तिनाथजी को वन्दना करता हूँ।
कुंथुं अरं च मल्लिं वंदे	कुंथुनाथजी, अरनाथजी और मल्लिनाथजी को वन्दना करता हूँ।
मुणिसुव्वयं नमिजिणं च	मुनिसुव्रत स्वामीजी और नमिनाथजी (जिन) को और

वंदामि रिट्ठनेमिं	अरिष्टनेमिजी को वन्दना करता हूँ।
पासं तह वद्धमाणं च	पार्श्वनाथजी और वर्धमान महावीर स्वामी को (वन्दना करता हूँ)।
एवं मए	इस प्रकार, मेरे द्वारा।
अभिथुआ	स्तुति किये गये।
विहूय-रयमला	कर्म रूपी रज मैल से रहित।
पहीण-जरमरणा	बुढ़ापा और मृत्यु से रहित।
चउवीसंपि	चौबीसों ही।
जिणवरा	जिनवर।
तित्थयरा मे पसीयंतु	तीर्थंकर देव मुझ पर प्रसन्न होवें।
कित्तिय वंदिय महिया	वचन योग से कीर्तित, मनोयोग से पूजित, काय योग से वंदित।
जे ए लोगस्स उत्तमासिद्धा	जो ये लोक के अन्दर उत्तम सिद्ध हैं।
आरुग्ग-बोहिलाभं	वे मुझे आरोग्यता व बोधि लाभ
समाहिवरमुत्तमं दिंतु	एवं श्रेष्ठ उत्तम समाधि देवें।
चंदेसु निम्मलयरा	जो चन्द्रमाओं से भी अधिक निर्मल हैं।
आइच्चेसु अहियं पयासयरा	सूर्यों से अधिक प्रकाश करने वाले।
सागरवर-गंभीरा	श्रेष्ठ महासागर के समान गम्भीर।
सिद्धा सिद्धिं मम	सिद्ध भगवान् मुझे सिद्ध गति प्रदान
दिसंतु	करें।

सामायिक प्रतिज्ञा सूत्र (करेमि भंते)

करेमि भंते ! सामाइयं	हे भगवन् ! मैं सामायिक ग्रहण करता हूँ।
सावज्जं जोगं	सावद्य (पापकारी) योग (व्यापारों) का।
पच्चक्खामि	त्याग करता हूँ।

जाव नियमं पज्जुवासामि	जब तक सामायिक के नियम का सेवन करूँ तब तक।
दुविहं तिविहेणं	दो करण, तीन योग से।
न करेमि	(पापकर्म) मैं स्वयं नहीं करूँगा।
न कारवेमि	(व) दूसरों से नहीं करवाऊँगा।
मणसा वयसा कायसा	मन, वचन और काया से (और)
तस्स भंते !	हे भगवन् ! उन पूर्वकृत पापों का।
पडिक्कमामि	प्रतिक्रमण करता हूँ अर्थात् पापों से पीछे हटता हूँ।
निंदामि	आत्म साक्षी से निंदा करता हूँ।
गरिहामि	गुरु साक्षी से गर्हा (निंदा) करता हूँ।
अप्पाणं वोसिरामि	पाप युक्त आत्मा को छोड़ता हूँ, अर्थात् आत्मा को पाप से अलग करता हूँ।

शक्रस्तव (नमोत्थु णं) सूत्र

नमोत्थु णं	नमस्कार हो।
अरिहंताणं भगवंताणं	अरिहंत भगवन्तों को। (जो)
आइगराणं	धर्म की आदि करने वाले।
तित्थयराणं	धर्मतीर्थ (चतुर्विध संघ) की स्थापना करने वाले।
सयं-संबुद्धाणं	अपने आप बोध को प्राप्त।
पुरिसुत्तमाणं	पुरुषों में उत्तम।
पुरिससीहाणं	पुरुषों में सिंह के समान (पराक्रमी)।
पुरिसवरपुंडरीयाणं	पुरुषों में श्रेष्ठ पुंडरीक कमल के समान।
पुरिसवरगंधहत्थीणं	पुरुषों में श्रेष्ठ गंधहस्ती के समान।

लोगुत्तमाणं	सम्पूर्ण लोक में उत्तम।
लोग-नाहाणं	सम्पूर्ण लोक के नाथ।
लोग-हियाणं	सम्पूर्ण लोक का हित करने वाले।
लोग-पईवाणं	लोक में प्रकाशित दीप के समान।
लोग-पज्जोअगराणं	लोक में धर्म का प्रद्योत (प्रकाश) करने वाले।
अभयदयाणं	सम्पूर्ण जीवों को भय रहित करने वाले अर्थात् अभय-दान देने वाले।
चक्खुदयाणं	ज्ञान रूपी चक्षु देने वाले।
मग्गदयाणं	मोक्ष-मार्ग बताने वाले, मार्ग प्रदाता।
सरणदयाणं	(कुमार्ग से बचाकर सन्मार्ग में लगाने में सहायक भूत होने से) शरण देने वाले अर्थात् शरणदाता।
जीवदयाणं	संयम-मय जीवन देने वाले।
बोहिदयाणं	सम्यक्त्व रत्न रूपी बोधि के दाता।
धम्मदयाणं	धर्म ग्रहण कराने वाले (धर्म पथ का बोध देने वाले) धर्म दाता।
धम्मदेसयाणं	धर्मोपदेशक।
धम्मनायगाणं	धर्म संघ का नायकत्व करने से धर्म के नेता।
धम्मसारहीणं	धर्म रूप रथ को चलाने वाले धर्म सारथी।
धम्मवर-चाउरंत-चक्कवट्टीणं	चार गति का अन्त करने वाले श्रेष्ठ धर्म। चक्रवर्ती।
दीवोत्ताणं	संसार-सागर में द्वीप के समान त्राण (सहारा-रक्षक) आधारभूत।

सरणगइपइट्ठाणं	दुःखी प्राणियों को आश्रय देने वाले सुगति में सहायक, पृथ्वी के समान आधारभूत।
अप्पडिहय-	पुनः नष्ट नहीं होने वाला अप्रतिहत।
वरनाणदंसण-धराणं	श्रेष्ठ ज्ञान, दर्शन के धारक।
विअट्टछउमाणं	छद्‌मस्थता से रहित।
जिणाणं	स्वयं रागद्वेष के विजेता।
जावयाणं	दूसरों को जिताने में सहायता देने वाले।
तिन्नाणं	स्वयं संसार-सागर से तिरने वाले।
तारयाणं	दूसरों को तिराने वाले।
बुद्धाणं	स्वयं बोध पाये हुए।
बोहयाणं	दूसरों को बोध कराने वाले।
मुत्ताणं	स्वयं कर्मों से मुक्त।
मोयगाणं	दूसरों को कर्मों से मुक्त कराने वाले।
सव्वण्णूणं सव्वदरिसीणं	सब कुछ जानने देखने वाले सर्वज्ञ, सर्वदर्शी।
सिव-मयल-मरूअ-मणंत-	निरुपद्रवी, अचल, रोग रहित, अनंत।
मक्खय-मव्वाबाह-	अक्षय, अव्याबाध।
मपुणराविति-	पुनरागमन रूप वृत्ति से रहित।
सिद्धिगइ-नामधेयं ठाणं	सिद्ध गति नामक स्थान को
संपत्ताणं	प्राप्त सिद्ध भगवान।
णमो जिणाणं जिअभयाणं	भय विजेता जिनेश्वरों को नमस्कार हो।
ठाणं संपाविउकामाणं	स्थान को प्राप्त करने वाले अरिहन्त भगवान।

एयस्स नवमस्स का पाठ
(सामायिक समापन सूत्र)

एयस्स नवमस्स	इस नवमें
सामाइय-वयस्स पंच-अइयारा	सामायिक व्रत के पाँच अतिचार हैं। (जो)
जाणियव्वा	जानने योग्य हैं। (किन्तु)
न समायरियव्वा	आचरण करने योग्य नहीं हैं।
तं जहा ते आलोउं	वे इस प्रकार हैं, उनकी आलोचना करता हूँ।
मणदुप्पणिहाणे	मन से अशुभ विचार किये हों।
वयदुप्पणिहाणे	अशुभ वचन बोले हों।
कायदुप्पणिहाणे	शरीर से अशुभ कार्य (सावद्य प्रवृत्ति) किये हों।
सामाइयस्स सइ-अकरणया	सामायिक की स्मृति नहीं रखी हो।
सामाइयस्स	सामायिक को।
अणवट्ठियस्स करणया	अव्यवस्थित रूप से (सुचारू रूप से नहीं) की हो तो।
तस्स मिच्छा मि दुक्कडं	वह मेरा पाप निष्फल हो।
सामाइयं सम्मं	सामायिक को सम्यक् प्रकार से।
काएणं	काया द्वारा।
न फासियं न पालियं	स्पर्श न की हो, पालन न की हो।
न तीरियं न किट्टियं	पूर्ण न की हो, कीर्त्तन (स्मरण) न की हो।
न सोहियं न आराहियं	शुद्धि (शोधन) न की हो, आराधना न की हो।

आणाए अणुपालियं न भवइ   आज्ञा के अनुसार पालना न हुई हो।
तस्स मिच्छा मि दुक्कडं   वह मेरा दुष्कृत कर्म निष्फल हो।।

सामायिक-महिमा

दिवसे दिवसे लक्खं देई, सुवण्णस्स खंडियं एगो।
एगो पुण सामाइयं, करेइ ण पहुप्पए तस्स।

एक व्यक्ति प्रतिदिन लाख स्वर्ण मुद्राओं का दान करता है और दूसरा व्यक्ति मात्र 2 घड़ी सामायिक करता है तो वह स्वर्ण मुद्राओं का दान करने वाला व्यक्ति सामायिक करने वाले की समानता नहीं कर सकता।

समता सर्वभूतेषु, संयमः शुभभावना।
आर्त्त-रौद्र-परित्यागस्तद्धि सामायिकव्रतम्।।

❑❑❑

प्रतिक्रमण सूत्र कठिन शब्दार्थ

इच्छामि णं भंते का पाठ

इच्छामि णं भंते !	हे भगवान ! चाहता हूँ यानी मेरी इच्छा है।
तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे	इसलिए आपके द्वारा आज्ञा मिलने पर।
देवसियं पडिक्कमणं	दिवस सम्बन्धी प्रतिक्रमण को।
ठाएमि	करता हूँ। (व)
देवसिय-नाण-दंसण-	दिवस सम्बन्धी ज्ञान-दर्शन।
चरित्ताचरित्त-	श्रावक व्रत
तव-	तप
अइयार-चिंतणत्थं	अतिचारों का चिन्तन करने के लिए।
करेमि काउस्सग्गं	कायोत्सर्ग करता हूँ।

इच्छामि ठामि का पाठ

इच्छामि ठामि काउस्सग्गं	मैं कायोत्सर्ग करना चाहता हूँ।
जो मे देवसिओ	जो मैंने दिवस सम्बन्धी।
अइयारो कओ	अतिचार (दोष) सेवन किये हैं। (चाहे वे)
काइओ, वाइओ, माणसिओ	काया, वचन व मन सम्बन्धी।
उस्सुत्तो	सूत्र सिद्धान्त के विपरीत उत्सूत्र की प्ररूपणा की हो।
उम्मग्गो	जिनेन्द्र प्ररूपित मार्ग से विपरीत उन्मार्ग का कथन व आचरण किया हो।

अकप्पो, अकरणिज्जो	अकल्पनीय (नहीं कल्पे वैसा), नहीं करने योग्य कार्य किए हों, (ये कायिक, वाचिक अतिचार हैं, इसी प्रकार।)
दुज्झाओ, दुव्विचिंतिओ	मन से कर्म बंध हेतु रूप दुष्ट ध्यान व किसी प्रकार का खराब चिंतन किया हो।
अणायारो, अणिच्छियव्वो	अनाचार सेवन (व्रत भंग) किया व नहीं चाहने योग्य की वांछा की हो।
असावगपाउग्गो	श्रावक-धर्म के विरूद्ध आचरण किया हो।
नाणे तह दंसणे	ज्ञान तथा दर्शन एवं
चरित्ताचरित्ते, सुए	श्रावक धर्म, सूत्र सिद्धान्त,
सामाइए	सामायिक में।
तिण्हं गुत्तीणं	तीन गुप्ति के गोपनत्व का।
चउण्हं कसायाणं	चार कषाय के सेवन नहीं करने की प्रतिज्ञा का।
पंचण्हमणुव्वयाणं	पाँच अणुव्रत।
तिण्हं गुणव्वयाणं	तीन गुणव्रत।
चउण्हं सिक्खावयाणं	चार शिक्षा व्रत रूप।
बारस-विहस्स सावग-धम्मस्स	बारह प्रकार के श्रावक-धर्म का।
जं खंडियं जं विराहियं	जो मेरे द्वारा देश रूप से खण्डन हुआ हो, सर्व रूप से विराधना हुई हो तो।
जो मे देवसिओ	जो मैंने दिवस सम्बन्धी।
अइयारो कओ	कोई अतिचार दोष किये हों तो।
तस्स मिच्छा मि दुक्कडं	वे मेरे दुष्कृत कर्मरूप पाप मिथ्या हो।

आगमे तिविहे का पाठ

आगमे तिविहे पण्णत्ते	आगम तीन प्रकार का कहा गया है।
तं जहा	वह इस प्रकार है जैसे-
सुत्तागमे,	सूत्र (मूल पाठ) रूप आगम,
अत्थागमे	अर्थ रूप आगम।
तदुभयागमे	उभय (मूल-अर्थ युक्त) रूप आगम।
जं	(आगम के विषय में जो अतिचार लगे हों) वे इस प्रकार हैं-
वाइद्धं	इन आगमों में कुछ भी क्रम छोड़ कर अर्थात् पद अक्षर को आगे-पीछे करके पढ़ा हो।
वच्चामेलियं	एक सूत्र का पाठ अन्य सूत्र में मिलाकर पढ़ा गया हो। (अविराम की जगह विराम लेकर अथवा स्व कल्पना से सूत्र भाष्य रचकर सूत्र में मिलाकर पढ़ा हो)।
हीणक्खरं, अच्चक्खरं	अक्षर घटा (कम) करके, बढ़ा करके बोला हो।
पयहीणं, विणयहीणं	पद को कम करके, विनयरहित (अनादर भाव से) पढ़ा हो।
जोगहीणं	मन, वचन व काया के योग रहित पढ़ा हो।
घोसहीणं	उदात्त आदि के उचित घोष (उच्चारण) बिना पढ़ा हो।
सुट्ठुदिण्णं	शिष्य की उचित शक्ति से न्यूनाधिक ज्ञान दिया हो।
दुट्ठुपडिच्छियं	दुष्ट भाव से ग्रहण किया हो।

अकाले कओ सज्झाओ	अकाल में (असमय) स्वाध्याय किया हो।
काले न कओ सज्झाओ	काल में स्वाध्याय न किया हो।
असज्झाइए सज्झायं	अस्वाध्याय की स्थिति में स्वाध्याय किया हो।
सज्झाइए न सज्झायं	स्वाध्याय की स्थिति में स्वाध्याय न किया हो।

दर्शन सम्यक्त्व का पाठ

अरिहंतो महदेवो जावज्जीवं	जीवन पर्यन्त अरिहंत मेरे देव हैं।
सुसाहुणो गुरुणो	सुसाधु (निर्ग्रन्थ) गुरु हैं।
जिण-पण्णत्तं तत्तं	जिनेश्वर कथित तत्त्व (धर्म) सार रूप है।
इअ सम्मत्तं	इस प्रकार का सम्यक्त्व।
मए गहियं	मैंने ग्रहण किया है।
परमत्थ-संथवो वा	परमार्थ का परिचय अर्थात् जीवादि तत्त्वों की यथार्थ जानकारी करना।
सुदिट्ठ-परमत्थ-सेवणा वा वि	परमार्थ के जानकार की सेवा करना।
वावण्ण-कुदंसण-वज्जणा	समकित से गिरे हुए तथा मिथ्या दृष्टियों की संगति छोड़ने रूप।
य सम्मत्त-सद्दहणा	ये इस सम्यक्त्व के (मेरे) श्रद्धान हैं अर्थात् मेरी श्रद्धा बनी रहे।
इअ सम्मत्तस्स	इस सम्यक्त्व के।
पंच अइयारा पेयाला	पाँच अतिचार रूप प्रधान दोष हैं। (जो)
जाणियव्वा	जानने योग्य हैं। (किन्तु)
न समायरियव्वा	आचरण करने योग्य नहीं हैं।
तं जहा	वे इस प्रकार हैं

ते आलोउं	उनकी मैं आलोचना करता हूँ।
संका	श्री जिन वचन में शंका की हो।
कंखा	परदर्शन की आकांक्षा की हो।
वितिगिच्छा	धर्म के फल में सन्देह किया हो।
परपासंड-पसंसा	पर पाखण्डी की प्रशंसा की हो।
परपासंड-संथवो	पर पाखण्डी का परिचय किया हो।

अठारह पाप स्थान का पाठ

प्राणातिपात	जीव की हिंसा करना।
मृषावाद	झूठ बोलना।
अदत्तादान	चोरी करना।
मैथुन	कुशील का सेवन करना।
परिग्रह	मूर्च्छा, धनादि द्रव्य पर ममत्व रखना (धन धान्यादि का आवश्यकता से अधिक संग्रह करना)।
क्रोध	रोष, गुस्सा।
मान	अहंकार-घमण्ड।
माया	छल-कपट।
लोभ	लालच-तृष्णा।
राग	मोह, आसक्ति।
द्वेष	वैर-विरोध।
कलह	क्लेश-झगड़ा।
अभ्याख्यान	झूठा कलंक लगाना।
पैशुन्य	चुगली करना।
परपरिवाद	दूसरों की निन्दा करना।
रति-अरति	अनुकूल विषयों में आनन्द, प्रतिकूल विषयों में खेद।

मायामृषावाद	कपट सहित झूठ बोलना।
मिथ्यादर्शन शल्य	झूठी मान्यता रूप काँटा अर्थात् देव, गुरु, धर्म की विपरीत श्रद्धा।

इच्छामि खमासमणो का पाठ

इच्छामि	चाहता हूँ।
खमासमणो	हे क्षमाश्रमण!
वंदिउं	वन्दना करना।
जावणिज्जाए	शक्ति के अनुसार।
निसीहियाए	शरीर को पाप क्रिया से हटा करके।
अणुजाणह मे	आप मुझे आज्ञा दीजिए।
मिउग्गहं	मितावग्रह (परिमित यानी चारों ओर साढ़े तीन हाथ भूमि) में प्रवेश करने की आज्ञा पाकर शिष्य बोले कि हे गुरुदेव! मैं।
निसीहि	समस्त सावद्य व्यापारों को मन, वचन, काया से रोक कर।
अहो कायं	आपकी अधोकाया (चरणों) को।
काय-संफासं	मेरी काया (हाथ और मस्तक) से स्पर्श करता हूँ (छूता हूँ)।
खमणिज्जो भे किलामो	इससे आपको मेरे द्वारा अगर कष्ट पहुँचा हो तो उस कष्ट प्रदाता को अर्थात् मुझे क्षमा करें।
अप्पकिलंताणं	हे गुरु महाराज! अल्प ग्लान अवस्था में रहकर।
बहुसुभेणं	बहुत शुभ क्रियाओं से सुख शान्ति पूर्वक।

भे! दिवसो वइक्कंतो?	आपका दिवस बीता है न ?
जत्ता भे ?	आपकी संयम रूप यात्रा निराबाध है न?
जवणि ज्जं च भे	आपका शरीर, इन्द्रिय और मन की पीड़ा (बाधा) से रहित है न।
खामेमि खमासमणो	हे क्षमाश्रमण! क्षमा चाहता हूँ।
देवसियं वइक्कमं	जो दिवस भर में अतिचार (अपराध) हो गये हैं उसके लिए।
आवस्सियाए पडिक्कमामि	आपकी आज्ञा रूप आवश्यक क्रियाओं के आराधन में दोषों से निवृत्ति (बचने का प्रयत्न) रूप प्रतिक्रमण करता हूँ।
खमासमणाणं	आप क्षमावान श्रमणों की।
देवसियाए	दिवस सम्बन्धी आशातना की हो।
आसायणाए तित्तिसन्नयराए	तैंतीस आशातनाओं में से कोई भी आशातना का सेवन किया हो।
जं किंचि मिच्छाए	जिस किसी भी मिथ्या भाव से किया हो (चाहे वह)।
मणदुक्कडाए	मन के अशुभ परिणाम से।
वयदुक्कडाए	दुर्वचन से।
कायदुक्कडाए	शरीर की दुष्ट चेष्टा से।
कोहाए माणाए मायाए लोहाए	क्रोध, मान, माया, लोभ से।
सव्वकालियाए	सर्वकाल (भूत, वर्तमान, भविष्य) में।
सव्व मिच्छोवयाराए	सर्वथा मिथ्योपचार से पूर्ण।
सव्व धम्माइक्कमणाए	सकल धर्मों का उल्लंघन करने वाली।
आसायणाए	आशातनाओं का सेवन किया या हुआ।
जो मे देवसिओ	(अर्थात्) जो मैंने दिवस सम्बन्धी।

अइयारो कओ	अतिचार (अपराध) किया।
तस्स खमासमणो	उसका हे क्षमाश्रमण!
पडिक्कमामि	प्रतिक्रमण करता हूँ।
निंदामि	आत्म साक्षी से निन्दा करता हूँ।
गरिहामि	आपकी (गुरु की) साक्षी से गर्हा करता हूँ।
अप्पाणं वोसिरामि	(व) दूषित आत्मा को त्यागता हूँ।

तस्स सव्वस्स का पाठ

तस्स सव्वस्स देवसियस्स	उन सब दिवस सम्बन्धी।
अइयारस्स	अतिचारों का जो।
दुब्भासिय-दुच्चिन्तिय-	दुर्वचन व बुरे चिन्तन से।
दुच्चिट्ठियस्स	तथा कायिक कुचेष्टा से किये गये हैं।
आलोयंतो पडिक्कमामि	उन अतिचारों की आलोचना करता हुआ उनसे निवृत्त होता हूँ।

चत्तारि मंगलं का पाठ

चत्तारि मंगलं	चार मंगल हैं।
अरिहंता मंगलं	अरिहन्त मंगल हैं।
सिद्धा मंगलं	सिद्ध मंगल हैं।
साहू मंगलं	साधु मंगल हैं।
केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं	केवली प्ररूपित दया धर्म मंगल है।
चत्तारि लोगुत्तमा	चार लोक में उत्तम हैं।
अरिहंता लोगुत्तमा	अरिहन्त लोक में उत्तम हैं।
सिद्धा लोगुत्तमा	सिद्ध लोक में उत्तम हैं।
साहू लोगुत्तमा	साधु लोक में उत्तम हैं।

केवलि-पण्णत्तो धम्मो	केवली प्ररूपित धर्म
लोगुत्तमो	लोक में उत्तम है।
चत्तारि सरणं पवज्जामि	चार शरणों को ग्रहण करता हूँ।
अरिहंते सरणं पवज्जामि	अरिहंत भगवान की शरण ग्रहण करता हूँ।
सिद्धे सरणं पवज्जामि	सिद्ध भगवान की शरण ग्रहण करता हूँ।
साहू सरणं पवज्जामि	साधुओं की शरण ग्रहण करता हूँ।
केवलि-पण्णत्तं धम्मं	केवली प्ररूपित दया धर्म की।
सरणं पवज्जामि	शरण ग्रहण करता हूँ।

बारह स्थूल

प्राणातिपात	प्राणों से रहित करना (मारना)।
गाढ़ा	मजबूत (दृढ़-कठोर)।
गाढ़ा घाव	गहरा घाव हो वैसा मारा हो।
अवयव	चाम आदि अंग-उपांग।
कूड़ा आल	व्यर्थ का गलत व झूठा दोषारोपण।
मर्म	चुभे जैसे अन्तर की गुप्त सत्य बात।
अधिकरण	हिंसा के साधन यानी हिंसाकारी शस्त्र।

बारह व्रत अतिचार सहित

-1-

पहला अणुव्रत	पहला अणुव्रत (अणु यानी महाव्रत की अपेक्षा छोटा व्रत)।
थूलाओ	स्थूल (बड़ी)।
पाणाइवायाओ	प्राणातिपात (जीव हिंसा) से।
वेरमणं	विरक्त (निवृत्त) होता हूँ। (जैसे वे)
त्रसजीव	चलते फिरते प्राणी हैं। (चाहे वे)

बेइन्द्रिय	दो इन्द्रिय वाले।
तेइन्द्रिय	तीन इन्द्रिय वाले।
चउरिन्द्रिय	चार इन्द्रिय वाले।
पंचेन्द्रिय	पाँच इन्द्रिय वाले।
संकल्प	मन में निश्चय करके।
सगे सम्बन्धी	सम्बन्धी जनों का।
स्वशरीर	अपने शरीर के उपचारार्थ।
सापराधी	अपराध सहित त्रस प्राणी हिंसा को छोड़ शेष।
निरपराधी	अपराध रहित प्राणी की हिंसा का।
आकुट्टी	मारने की भावना से।
हनने	मारने का।
पच्चक्खाण	त्याग करता हूँ।
जावज्जीवाए	जीवन पर्यन्त।
दुविहं तिविहेणं	दो करण, तीन योग से अर्थात्
न करेमि	स्वयं नहीं करूँगा,
न कारवेमि	दूसरों से नहीं कराऊँगा।
मणसा वयसा कायसा	मन, वचन, काया से
बंधे	गाढ़े बन्धन से बाँधा हो।
वहे	वध (मारा या गाढ़ा घाव घाला हो)।
छविच्छेए	अंगोपांग को छेदा हो।
अइभारे	अधिक भार भरा हो।
भत्तपाण-विच्छेए	भोजन पानी में बाधा की हो।

–2–

कन्नालीए	कन्या या वर सम्बन्धी।
गोवालीए	गाय आदि पशु सम्बन्धी।
भोमालीए	भूमि भवन आदि।
णासावहारो	धरोहर दबाने के लिए झूठ बोलना।
कूडसक्खिज्जे	झूठी साक्षी देना।
सहस्सब्भक्खाणे	बिना विचारे यकायक किसी पर झूठा आल (दोष) देना।
रहस्सब्भक्खाणे	गुप्त बातचीत करते हुए पर झूठा आल (दोष) देना।
सदारमंत-भेए	अपनी स्त्री का मर्म प्रकाशित किया हो।
मोसोवएसे	झूठा उपदेश दिया हो।
कूडलेहकरणे	झूठा लेख लिखा हो।

–3–

थूलाओ अदिण्णादाणाओ	स्थूल बिना दी वस्तु लेने रूप बड़ी चोरी से।
वेरमणं	निवृत्त।
खात खनकर	दीवार में सेंध लगाकर।
धणियाति	मालिक की यानी।
मोटी वस्तु	मोटी वस्तु के।
जानकर लेना	अधिकारी की जानकारी होने पर भी उसको उठाने का।
सगे सम्बन्धी	पारिवारिक जन की बिना आज्ञा कोई वस्तु लेनी पड़े। (व)

व्यापार सम्बन्धी	व्यवसाय सम्बन्धी। (तथा)
निर्भ्रमी	शंका रहित।
तेनाहडे	चोर की चुराई हुई वस्तु ली हो।
तक्करप्पओगे	चोर की सहायता की हो।
विरुद्धरज्जाइक्कमे	राज्य के विरुद्ध काम किया हो।
कूडतुल्ल-कूडमाणे	कूड़ा तोल कूड़ा माप किया हो।
तप्पडिरूवगववहारे	वस्तु में भेल संभेल किया हो।

-4-

सदार-संतोसिए	अपनी पत्नी में संतोष के सिवाय।
अवसेस-मेहुणविहिं	शेष सभी प्रकार की मैथुन विधि का।
पच्चक्खामि	त्याग करता हूँ।
इत्तरियपरिग्गहिया-गमणे	अल्पवय वाली परिग्रहीता के साथ गमन करना। या अल्प समय के लिए रखी हुई के साथ गमन किया हो।
अपरिग्गहिया-गमणे	परस्त्री या सगाई की हुई के साथ गमन करना।
अनंगकीडा	काम सेवन योग्य अंगों के सिवाय अन्य अंगों से कुचेष्टा करना।
परविवाहकरणे	दूसरों का विवाह करवाना।
कामभोगा-तिव्वाभिलासे	कामभोगों की प्रबल इच्छा करना।

-5-

यथा परिमाण	जैसी मर्यादा की है।
खेत्त-वत्थुप्पमाणाइक्कमे	खुली भूमि (खेत आदि) और घर दुकान आदि के परिमाण का अतिक्रमण करना।

हिरण्ण-सुवण्णप्पमाणाइक्कमे	चाँदी सोने के परिमाण का अतिक्रमण करना।
धण-धण्णप्पमाणाइक्कमे	धन-धान्य अनाज आदि के परिमाण का अतिक्रमण करना।
दुप्पय-चउप्पयप्पमाणाइक्कमे	नौकर, पशु आदि के परिमाण का अतिक्रमण करना।
कुवियप्पमाणाइक्कमे	घर की सारी सामग्री की मर्यादा का उल्लंघन किया हो।

-6-

उड्ढ	ऊर्ध्व (ऊँची)
अहो	अधो (नीची)
तिरिय	तिर्यक् (तिरछी)
दिसी	दिशा
खित्त-वुड्ढी	क्षेत्र वृद्धि (बढ़ाया) की हो।
सइ-अंतरद्धा	क्षेत्र परिमाण भूलने से पथ का सन्देह पड़ने से आगे चला हो।

-7-

उपभोग	एक बार भोगा जा सके जैसे अनाज, पानी आदि।
परिभोग	अनेक बार भोगा जा सके, जैसे वस्त्र, आभूषण आदि।
विहिं पच्चक्खायमाणे	विधि का (पदार्थों की जाति का) त्याग करते हुए।
उल्लणियाविहि	अंग पोंछने के वस्त्र (अंगोछा आदि)।

दंतणविहि	दाँतोन के प्रकार। (मंजन)
फलविहि	फल के प्रकार।
अब्भंगणविहि	मर्दन के तेल के प्रकार।
उवट्टणविहि	उबटन, पीठी आदि करने की मर्यादा।
मज्जणविहि	स्नान संख्या एवं जल का प्रमाण।
वत्थविहि	वस्त्र, पहनने योग्य कपड़े।
विलेवणविहि	विलेपन (लेप) चन्दन आदि।
पुप्फविहि	फूल, फूलमाला आदि।
आभरणविहि	आभूषण अँगूठी आदि।
धूवविहि	धूप, अगर, तगर आदि।
पेज्जविहि	पेय, दूध आदि पदार्थों की मर्यादा।
भक्खणविहि	मिठाई आदि।
ओदणविहि	पकाये हुए चावल आदि।
सूपविहि	मूँग, चने की दाल आदि।
विगयविहि	दूध, दही, मट्ठा आदि।
सागविहि	शाक, सब्जी आदि।
महुरविहि	मधुर फल आदि।
जीमणविहि	रोटी, पुड़ी, रायता, बड़ा, पकोड़ी आदि। जीमने के द्रव्यों के प्रकार का प्रमाण।
पाणियविहि	पीने योग्य पानी।
मुखवासविहि	लौंग, सुपारी आदि।
वाहणविहि	वाहन (घोड़ा, मोटर आदि)।
उवाणहविहि	जूते, मोजे आदि।
सयणविहि	सोने-बैठने योग्य पलंग, कुर्सी आदि।
सचित्तविहि	जीव सहित वस्तु जैसे नमक आदि।

दव्वविहि	द्रव्य की विधि (मर्यादा)।
दुविहे	दो प्रकार।
पण्णत्ते	कहा गया है।
तं जहा	वह इस प्रकार है।
भोयणाओ	भोजन की अपेक्षा से।
य	और
कम्मओ य	कर्म की अपेक्षा से।
भोयणाओ	भोजन सम्बन्धी नियम के।
समणोवासएणं	श्रमणोपासक (श्रावक) के।
पंच-अइयारा	पाँच अतिचार।
सचित्ताहारे	सचित्त वस्तु का भोजन करना।
सचित्त-पडिबद्धाहारे	सचित्त (वृक्षादि से) सम्बन्धित (लगे हुए गोंद, पके फल आदि खाना) वस्तु भोगना।
अप्पउली-ओसहि-भक्खणया	अचित्त नहीं बनी हुई वस्तु का आहार करना या जिसमें जीव के प्रदेशों का सम्बन्ध हो ऐसी तत्काल पीसी हुई या मर्दन की हुई वस्तु का भोजन करना।
दुप्पउली-ओसहि-भक्खणया	दुष्पक्व वस्तु का भोजन करना।
तुच्छोसहि-भक्खणया	तुच्छ औषधि (जिसमें सार भाग कम हो उस वस्तु) का भक्षण करना।
कम्मओ य णं	कर्मादान की अपेक्षा।
समणोवासएणं	श्रावक के जो।
पण्णरस-कम्मादाणाइं	15 कर्मादान हैं वे।
जाणियव्वाइं	जानने योग्य हैं।
न समायरियव्वाइं	परन्तु आचरण करने योग्य नहीं हैं।

तं जहा	वे इस प्रकार हैं।
ते आलोउं-	उनकी मैं आलोचना करता हूँ।
इंगालकम्मे	ईंट, कोयला, चूना आदि बनाना।
वणकम्मे	वृक्षों को काटना।
साडीकम्मे	गाड़ियाँ आदि बनाकर बेचना।
भाडीकम्मे	गाड़ी आदि किराये पर देना।
फोडीकम्मे	पत्थर आदि फोड़कर कमाना।
दन्तवाणिज्जे	दाँत आदि का व्यापार करना।
लक्खवाणिज्जे	लाख आदि का व्यापार करना।
रसवाणिज्जे	शराब आदि रसों का व्यापार।
केसवाणिज्जे	दास-दासी, पशु आदि का व्यापार।
विसवाणिज्जे	विष, सोमल, संखिया आदि तथा शस्त्रादि का व्यापार करना।
जंतपीलणकम्मे	तिल आदि पीलने के यन्त्र चलाना।
निल्लंछणकम्मे	नपुंसक बनाने का काम करना।
दवग्गिदावणया	जंगल में आग लगाना।
सरदह-तलाय-सोसणया	सरोवर तालाब आदि सुखाना।
असइ-जण-पोसणया	वैश्या आदि का पोषण कर दुष्कर्म से द्रव्य कमाना।

-8-

अणट्ठादण्ड	बिना प्रयोजन ऐसे काम करना जिसमें जीवों की हिंसा होती है।
विरमण व्रत	निवृत्ति रूप व्रत लेता हूँ।
चउव्विहे अणट्ठा दंडे पण्णत्ते	वे अनर्थ कार्य चार प्रकार के हैं।

तं जहा	जो इस प्रकार हैं-
अवज्झाणायरिये	अपध्यान (आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान) का आचरण करने रूप।
पमायायरिये	प्रमाद का आचरण करने रूप।
हिंसप्पयाणे	हिंसा का साधन।
पावकम्मोवएसे	पापकारी कार्य का उपदेश देने रूप।
एवं आठवाँ अणट्ठादण्ड	इस प्रकार के आठवें व्रत में अनर्थ दंड का।
सेवन का पच्चक्खाण	सेवन करने का त्याग करता हूँ। (सिवाय आठ आगार रखकर के जैसे)
आए वा	आत्मरक्षा के लिए।
राए वा	राजा की आज्ञा से।
नाए वा	जाति जन के दबाव से।
परिवारे वा	परिवार वालों के दबाव से, परिवार वालों के लिए।
देवे वा	देव के उपसर्ग से।
नागे वा	नाग के उपद्रव से।
जक्खे वा	यक्ष के उपद्रव से।
भूए वा	भूत के उपद्रव से।
एत्तिएहिं	इस प्रकार के अनर्थ दण्ड का सेवन करना पड़े तो।
आगारेहिं	आगार रखता हूँ।
अण्णत्थ	उपरोक्त आगारों के सिवाय।
कंदप्पे	कामविकार पैदा करने वाली कथा की हो

कुक्कुइए	भंड-कुचेष्टा की हो
मोहरिए	मुखरी वचन बोला हो यानी वाचालता से असभ्य वचन बोलना।
संजुत्ताहिगरणे	अधिकरण जोड़ रखा हो।
उवभोगपरिभोगाइरित्ते	उपभोग-परिभोग अधिक बढ़ाया हो।

-9-

सावज्जं जोगं	सावद्य (पापकारी) योगों का
पच्चक्खामि	प्रत्याख्यान करता हूँ।
जाव नियमं पज्जुवासामि	जब तक सामायिक के नियम का पालन करूँ तब तक।
मणदुप्पणिहाणे	मन से अशुभ विचार किये हों।
वयदुप्पणिहाणे	अशुभ वचन बोले हों।
कायदुप्पणिहाणे	शरीर से अशुभ कार्य किये हों।
सामाइयस्स सइ-अकरणया	सामायिक की स्मृति नहीं रखी हो।
सामाइयस्स	सामायिक को।
अणवट्ठियस्स करणया	अव्यवस्थित रूप से किया हो।

-10-

देसावगासिक	मर्यादाओं का संक्षेप (कम) करना।
जाव अहोरत्तं	एक दिन-रात पर्यन्त।
आणवणप्पओगे	मर्यादा किये हुए क्षेत्र से आगे की वस्तु को आज्ञा देकर माँगना।
पेसवणप्पओगे	परिमाण किये हुए क्षेत्र से आगे की वस्तु को मँगवाने के लिए या लेन-देन करने के लिए अपने नौकर आदि को भेजना या

	सेवक के साथ वस्तु को बाहर भेजना।
सद्दाणुवाए	सीमा से बाहर के मनुष्य को खाँस कर या और किसी शब्द के द्वारा अपना ज्ञान कराना।
रुवाणुवाए	रूप दिखाकर सीमा से बाहर के मनुष्य को अपने भाव प्रकट किये हों।
बहिया-पुग्गल-पक्खेवे	बुलाने के लिए कंकर आदि फेंकना।

-11-

असणं	दाल-भात, रोटी, अन्न तथा शरबत, दूध आदि विगय।
पाणं	धोवन पानी।
खाइमं	फल मेवा आदि।
साइमं	लोंग, सुपारी, इलायची, चूर्ण आदि भोजन के बाद खाने लायक स्वादिष्ट पदार्थ।
अबंभ सेवन	मैथुन (कुशील-व्यभिचार) सेवन।
अमुकमणि सुवर्ण	मणि, मोती तथा सोने-चाँदी आभूषण आदि।
माला	फूल माला।
वणग्ग	सुगन्धित चूर्ण आदि।
विलेवण	चन्दन आदि का लेप।
सत्थ	तलवार आदि शस्त्र।
मूसलादिक	मूसल आदि औजार।
सावज्जजोग	पाप सहित व्यापार।
शय्यासंथारा	शयन आदि का आसन।

अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहिय-सेज्जासंथारए	पौषध में शय्या संथारा न देखा हो या अच्छी तरह से न देखा हो।
अप्पमज्जिय-दुप्पमज्जिय-सेज्जासंथारए	प्रमार्जन न किया हो या अच्छी तरह से न किया हो।
अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहिय-उच्चार-पासवण-भूमि	उच्चार पासवण की भूमि को न देखी हो या अच्छी तरह से न देखी हो।
अप्पमज्जिय-दुप्पमज्जिय-उच्चार-पासवण-भूमि	पूँजी न हो या अच्छी तरह से न पूँजी हो।
पोसहस्स सम्मं अणणुपालणया	उपवास युक्त पौषध का सम्यक् प्रकार से पालन न किया हो।

-12-

अतिथि संविभाग	जिसके आने की कोई तिथि या समय नियत नहीं है ऐसे अतिथि साधु को अपने लिए तैयार किये भोजन आदि में से कुछ हिस्सा देना।
समणे	श्रमण साधु।
निग्गंथे	निर्ग्रन्थ पंच महाव्रत धारी को।
फासुयएसणिज्जेणं	प्रासुक (अचित्त) ऐषणिक (उद्‌गम आदि दोष रहित)।
असण-पाण-खाइम-साइम-	अशन, पान, खादिम, स्वादिम।
वत्थ-पडिग्गह-कम्बल-	वस्त्र, पात्र, कंबल।
पायपुंछणेणं	पादप्रोंछन (पाँव पोंछने का रजोहरण आदि)।
पाडिहारिय-	वापिस लौटा देने योग्य। (जिस वस्तु को

	साधु कुछ काल तक रख कर बाद में वापिस लौटा देते हैं)।
पीढ-फलग-सेज्जासंथारएणं	चौकी, पट्टा, शय्या के लिए संस्तारक तृण आदि का आसन।
ओसह-भेसज्जेणं	औषध और भेषज (कई औषधियों के संयोग से बनी हुई गोलियाँ) आदि।
पडिलाभेमाणे	देता हुआ (बहराता हुआ)।
विहरामि	रहूँ।
सचित्त-निक्खेवणया	साधु को नहीं देने की बुद्धि से अचित्त वस्तु को सचित्त जल आदि पर रखना।
सचित्त-पिहणया	साधु को नहीं देने की बुद्धि से अचित्त वस्तु को सचित्त से ढ़ँक देना।
कालाइक्कमे	भिक्षा का समय टाल कर भावना भायी हो।
परववएसे	आप सूझता होते हुए दूसरों से दान दिलाया हो।
मच्छरियाए	मत्सर भाव से दान दिया हो।

बड़ी संलेखना का पाठ

अह भंते !	इसके बाद हे भगवान !
अपच्छिम-मारणंतिय-संलेहणा	सबके पश्चात् मृत्यु के समीप होने वाली संलेखना अर्थात् जिसमें शरीर, कषाय, ममत्व आदि कृश (दुर्बल) किये जाते हैं, ऐसे तप विशेष के।
झूसणा	संलेखना का सेवन करना।
आराहणा	संलेखना की आराधना।

पौषधशाला	धर्मस्थान अर्थात् पौषधशाला।
पडिलेहिय	प्रतिलेखन कर।
उच्चार-पासवण-भूमि	मलमूत्र त्यागने की भूमि का।
पडिलेह कर	प्रतिलेखन अर्थात् देखकर के।
गमणागमणे	जाने आने की क्रिया का।
पडिक्कम कर	प्रतिक्रमण कर।
दर्भादिक संथारा	डाभ (तृण, घास) का संथारा।
संथार कर	बिछाकर।
दुरूह कर	संथारे पर आरूढ़ होकर के।
करयल-संपरिग्गहियं	दोनों हाथ जोड़कर।
सिरसावत्तं	मस्तक से आवर्तन (मस्तक पर जोड़े हुए हाथों को तीन बार अपनी बायीं ओर से घुमा) करके।
मत्थए अंजलि-कट्टु	मस्तक पर हाथ जोड़कर।
एवं वयासी	इस प्रकार बोले।
नि:शल्य	माया, निदान और मिथ्यादर्शन इन तीन शल्यों से रहित।
अकरणिज्जं	नहीं करने योग्य।
जं पियं इमं सरीरं	और जो भी यह शरीर।
इट्ठं	इष्ट।
कंतं	कान्तियुक्त।
पियं	प्रिय, प्यारा।
मणुण्णं	मनोज्ञ, मनोहर।
मणामं	मन के अनुकूल।

धिज्जं	धैर्यशाली। धारण करने योग्य।
विसासियं	विश्वास करने योग्य।
सम्मयं	मानने योग्य। सम्मत।
अणुमयं	विशेष सम्मान को प्राप्त।
बहुमयं	बहुमत (बहुत माननीय) जो देह।
भण्ड-करण्डगसमाणं	आभूषण के करण्डक (करण्डिया डिब्बा) के समान।
रयण-करण्डगभूयं	रत्नों के करण्डक के समान जिसे।
मा णं सीयं	शीत (सर्दी) न लगे।
मा णं उण्हं	उष्णता (गर्मी) न लगे।
मा णं खुहा	भूख न लगे।
मा णं पिवासा	प्यास न लगे।
मा णं वाला	सर्प न काटे।
मा णं चोरा	चोरों का भय न हो।
मा णं दंसमसगा	डांस व मच्छर न सतावें।
वाइयं	वात।
पित्तियं	पित्त।
कप्फियं	कफरूप त्रिदोष।
संभीमं	भयंकर।
सण्णिवाइयं	सन्निपात रोग न हो।
विविहा	अनेक प्रकार के।
रोगायंका	रोग (संबंधी पीड़ाएँ) और आतंक न आवे।
परीसहा	क्षुधा आदि परीषह।
उवसग्गा	उपसर्ग। देव, तिर्यंच आदि द्वारा दिये गये कष्ट।
फासा फुसंतु	स्पर्श न करें ऐसा माना किन्तु अब।

एवं पिय णं	इस प्रकार के प्यारे देह को।
चरमेहिं	अन्तिम।
उस्सास-णिस्सासेहिं	उच्छवास, नि:श्वास तक।
वोसिरामि	त्याग करता हूँ।
त्ति कट्टु	ऐसा करके।
कालं अणवकंखमाणे	काल की आकांक्षा (इच्छा) नहीं करता हुआ।
विहरामि	विहार करता हूँ, विचरता हूँ।
इहलोगासंसप्पओगे	इस लोक में राजा चक्रवर्ती आदि के सुख की कामना करना।
परलोगासंसप्पओगे	परलोक में देवता इन्द्र आदि के सुख की कामना करना।
जीवियासंसप्पओगे	महिमा प्रशंसा फैलने पर बहुत काल तक जीवित रहने की कामना करना।
मरणासंसप्पओगे	कष्ट होने पर शीघ्र मरने की इच्छा करना।
कामभोगासंसप्पओगे	कामभोग की अभिलाषा करना।

तस्स धम्मस्स का पाठ

तस्स धम्मस्स	उस धर्म की जो।
केवलिपण्णत्तस्स	केवली भाषित है उस ओर।
अब्भुट्ठिओमि	उद्यत हुआ हूँ।
आराहणाए	आराधना करने के लिए।
विरओमि	विरत (अलग) होता हूँ।
विराहणाए	विराधना से।
तिविहेणं	मन, वचन, काया द्वारा।
पडिक्कंतो	निवृत्त होता हुआ।

वंदामि	वन्दना करता हूँ।
जिण-चउव्वीसं	चौबीस तीर्थंकरों को।

आयरिय उवज्झाए का पाठ

आयरिय-	आचार्यों के प्रति।
उवज्झाए-	उपाध्यायों के प्रति।
सीसे	शिष्यों के प्रति।
साहम्मिए	साधर्मिकों के प्रति।
कुल-	एक आचार्य का शिष्य समुदाय के प्रति।
गणे य	गण समूह पर के प्रति।
जे	जो।
मे	मैंने।
केई	कुछ।
कसाया	क्रोध आदि कषाय किया हो तो।
सव्वे	सबको।
तिविहेणं	तीन योग (मन, वचन, काया) से।
खामेमि	खमाता हूँ। क्षमा चाहता हूँ।
सव्वस्स	(इसी प्रकार) सभी।
समण-संघस्स	श्रमण-संघ-साधु समुदाय (चतुर्विध संघ)
भगवओ	भगवान को।
अंजलिं करिअ	दोनों हाथ जोड़ करके।
सीसे	शीश पर लगा कर।
सव्वं	सबको।
खमावइत्ता	खमा करके।
खमामि	खमाता हूँ, क्षमा चाहता हूँ
सव्वस्स	सबको।

अहयंपि	मैं भी।
सव्वस्स	सभी।
जीव-रासिस्स	जीव राशि से।
भावओ	भाव से।
धम्मं निहिय-नियचित्तो	धर्म में चित्त को स्थिर करके।
सव्वं	सबको।
खमावइत्ता	खमा करके।
खमामि	खमाता हूँ, क्षमा चाहता हूँ।

क्षमापना पाठ

खामेमि	क्षमा चाहता हूँ।
सव्वे	सब।
जीवा	जीवों की।
सव्वे	सभी।
जीवा	जीव।
खमंतु	क्षमा करो।
मे	मुझको।
मित्ति	मित्रता है।
मे	मेरी।
सव्व भूएसु	सभी प्राणियों से।
वेरं	शत्रुता।
मज्झं	मेरी।
न	नहीं।
केणइ	किसी के साथ।
एवमहं (एवं अहं)	इस प्रकार मैं।
आलोइय-	आलोचना करके।

निंदिय-	आत्म साक्षी से निन्दा करके।
गरिहिय-	गुरु साक्षी से गर्हा करके।
दुगुंछियं	जुगुप्सा (ग्लानि-घृणा) करके।
सम्मं	सम्यक् प्रकार से।
तिविहेणं	मन, वचन, काया द्वारा।
पडिक्कंतो	पापों से निवृत्त होता हुआ।
वंदामि	वन्दना करता हूँ।
जिण-चउव्वीसं	24 अरिहन्त भगवान को।

समुच्चय पच्चक्खाण का पाठ

गंठिसहियं	गाँठ सहित यानी जब तक गाँठ बँधी रखूँ, तब तक।
मुट्ठिसहियं	मुट्ठी सहित अर्थात् जब तक मैं मुट्ठी बन्द रखूँ, तब तक।
नमुक्कारसहियं	नमस्कार मन्त्र बोल कर सूर्योदय से लेकर एक मुहूर्त्त (48 मिनट) तक त्याग।
पोरिसियं	एक प्रहर का त्याग।
साड्ढ-पोरिसियं	डेढ़ प्रहर का त्याग।
अन्नत्थ	निम्न आगारों को छोड़कर
अणाभोगेणं	बिना उपयोग के कोई वस्तु सेवन की हो।
सहसागारेणं	अकस्मात् जैसे पानी बरसता हो और मुख में छींटे पड़ जाये, या छाछ बिलोते समय मुँह में छींटे पड़ जाये।
महत्तरागारेणं	महापुरुषों की आज्ञा से अर्थात् गुरुजन के निमित्त से त्याग का भंग करना पड़े।
सव्वसमाहिवत्तियागारेणं	सब प्रकार की शारीरिक, मानसिक

	निरोगता रहे तब तक अर्थात् शरीर में भयंकर रोग हो जाये तो दवाई आदि का आगार है।
वोसिरामि	त्याग करता हूँ।

मुँहपत्ति का प्रमाण व बिना मुँहपत्ति बाँधे धर्म क्रिया करने का प्रायश्चित्त–

गाथा–

एक–वीसांगुलायामा, सोलसंगुल–वित्थिण्णा।
चउक्कार–संजुया य, मुंहपोत्तिय एरिसा होई।।1।।

अर्थ–21 अंगुल लम्बा और 16 अंगुल चौड़ा ऐसे चौकाने वस्त्र की मुँहपत्ति होती है। (हर व्यक्ति के अपने–अपने अंगुल से लम्बाई–चौड़ाई का नाप होगा)।

गाथा–

मुहणंतगेण कणोट्ठिया,
विणा बंधइ जे कोवि सावए धम्मकिरिया य करंति।
तस्स इक्कारस सामाइयस्स,
णं पायच्छित्तं भवइ।।2।।

अर्थ–जो श्रावक मुँह पर मुँहपत्ति बाँधे बिना सामायिक करे, उसे 11 सामायिक का प्रायश्चित्त आता है।

सामायिक के बत्तीस दोष

मन के दस दोष

अविवेग-जसोकित्ती, लाभत्थी गव्व-भय-नियाणत्थी।
संसय-रोस-अविणओ, अबहुमाण ए दस दोसा भणियव्वा।।

अविवेक दोष	विवेक नहीं रखना।
यशोवांछा दोष	यशकीर्ति की इच्छा करना।
लाभ वांछा दोष	धनादि के लाभ की इच्छा करना।
गर्व दोष	गर्व करना।
भय दोष	भय करना।
निदान दोष	भविष्य के सुख की कामना करना।
संशय दोष	सामायिक के फल की प्राप्ति में सन्देह करना।
रोष दोष	क्रोध करना।
अविनय दोष	देव, गुरु, धर्म की अविनय आशातना करना।
अबहुमान दोष	भक्तिभावपूर्वक सामायिक न करना।

वचन के दस दोष

कुवयण-सहसाकारे, सच्छंदं संखेव-कलहं च।
विगहा विहासोऽसुद्धं, निरवेक्खो मुणमुणा दोसा दस।।

कुवचन दोष	बुरे वचन बोलना।
सहसाकार दोष	बिना विचारे बोलना।
स्वच्छन्द दोष	राग-रागनियों से सम्बन्धित गीत गाना।
संक्षेप दोष	पाठ और वाक्यों को छोटे करके बोलना।
कलह दोष	क्लेशकारी वचन बोलना।
विकथा दोष	स्त्रीकथा, भोजन कथा, देश कथा और राजकथा इन चार विकथाओं में से कोई विकथा करना।
हास्य दोष	हँसी-ठठ्ठा करना।

अशुद्ध दोष	पाठ को अशुद्ध बोलना।
निरपेक्ष दोष	बिना उपयोग बोलना।
मुम्मण दोष	अस्पष्ट-मुण मुण बोलना।

काया के बारह दोष

कुआसणं चलासणं चलदिट्ठि,
सावज्जकिरियालंबणाकुंचणपसारणं।
आलस्स-मोडण-मल-विमासणं,
निद्दावेयावच्चति बारस्स-कायदोसा।।

कुआसन दोष	अयोग्य-अभिमान आदि के आसन से बैठना।
चलासन दोष	आसन बार-बार बदलना।
चलदृष्टि दोष	इधर-उधर दृष्टि फेरना।
सावद्य-क्रिया दोष	सावद्य क्रिया-सीना, पिरोना आदि गृह कार्य करना।
आलम्बन दोष	भींतादि का सहारा लेना।
आकुंचन प्रसारण दोष	बिना कारण हाथ पैर-फैलाना, समेटना।
आलस्य दोष	अंग मोड़ना, आलस करना आदि।
मोटन दोष	हाथ-पैर की अँगुलियों का कड़का निकालना।
मल दोष	मैल उतारना।
विमासन	गले या गाल पर हाथ लगाकर शोकासन से बैठना।
निद्रा	निद्रा लेना।
वैयावृत्त्य	बिना कारण दूसरों से वैयावृत्त्य-सेवा कराना।

सामायिक-प्रश्नोत्तर

प्र. 1. मन्त्र किसे कहते हैं?

उत्तर जिसमें कम शब्दों में अधिक भाव और विचार हो और जो कार्यसिद्धि में सहायक हो, जिसके मनन से जीव को रक्षण प्राप्त हो, उसे मन्त्र कहते हैं।

प्र. 2. नवकार मन्त्र का क्या महत्त्व है?

उत्तर नवकार मन्त्र का अर्थ है–नमस्कार मन्त्र। प्राकृत भाषा में नमस्कार को 'णमोक्कार' कहते हैं। इसमें पाँच पदों को नमन किया गया है। इनमें से दो देवपद (अरिहंत और सिद्ध) एवं शेष तीन गुरु पद (आचार्य, उपाध्याय एवं साधु) हैं। ये पाँचों पद अपने आराध्य या इष्ट होने के साथ हमेशा परम (श्रेष्ठ) भाव में स्थित रहते हैं, इसलिए इन्हें पंच परमेष्ठी भी कहा गया है। इस मंत्र के उच्चारण से पापों का नाश होता है। यह मंगलकारी है।

प्र. 3. नवकार मन्त्र मंगल रूप क्यों है?

उत्तर **'मं'** का अर्थ है–पाप, और **'गल'** का अर्थ है–गलाना। जो पाप को गलावे, वह मंगल है। नवकार मंत्र से पाप का क्षय होता है, पाप रुकते हैं, इसलिए नवकार मंत्र मंगल रूप है।

प्र. 4. नवकार मंत्र में कितने पद और अक्षर हैं?

उत्तर नवकार मंत्र में 5 पद व 35 अक्षर हैं। चूलिका को मिलाने पर कुल 9 पद और 68 अक्षर होते हैं।

प्र. 5. नवकार मंत्र में धर्मपद कौन सा है?

उत्तर नवकार मंत्र में 'णमो' शब्द धर्म पद है, क्योंकि 'णमो' विनय का प्रतिपादक है। विनय ही धर्म का मूल है।

प्र. 6. नवकार मंत्र किस भाषा में है?

उत्तर नवकार मंत्र प्राकृत (अर्धमागधी प्राकृत) भाषा में है।

प्र. 7. अरिहन्त किसे कहते हैं?

उत्तर जिन्होंने चार घाती कर्मों–ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय का क्षय करके अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र और अनन्त बल वीर्य नामक चार मूल गुणों को परिपूर्ण रूप से प्रकट कर लिया है, उन्हें अरिहन्त कहते हैं, इन्हें तीर्थङ्कर या जिन भी कहते हैं।

प्र. 8. सिद्ध किसे कहते हैं?

उत्तर जो आठों कर्मों का क्षय कर चुके हैं तथा जिन्होंने आत्मा के आठों गुणों को हमेशा के लिए सम्पूर्ण रूप से प्रकट कर लिया है, उन्हें सिद्ध कहते हैं।

प्र. 9. अरिहन्त और सिद्ध में क्या अन्तर है?

उत्तर अरिहन्त भगवान चार घाती कर्मों–ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय का क्षय कर चुके हैं। अरिहन्त सशरीरी होने से तीर्थ की स्थापना करते हैं, उपदेश देते हैं और धर्म से गिरते हुए साधकों को स्थिर करते हैं, जबकि सिद्ध आठ कर्मों (1. ज्ञानावरणीय, 2. दर्शनावरणीय, 3. वेदनीय, 4. मोहनीय, 5. आयु, 6. नाम, 7. गोत्र, 8. अन्तराय) को क्षय करके

सिद्ध हो गये हैं और वे सुखरूप सिद्धालय में विराजमान हैं। वे अशरीरी होने से उपदेश आदि की प्रवृत्ति नहीं करते।

प्र. 10. सिद्ध मुक्त हैं, फिर भी सिद्धों के पहले अरिहन्तों को नमस्कार क्यों किया गया?

उत्तर अरिहन्त धर्म को प्रकट कर मोक्ष की राह दिखाने वाले और सिद्धों की पहचान कराने वाले हैं। अरिहन्त सशरीरी हैं और सिद्ध अशरीरी। परम उपकारी होने के कारण सिद्धों के पहले अरिहन्तों को नमस्कार किया गया है।

प्र. 11. आचार्य किसे कहते हैं?

उत्तर चतुर्विध संघ के वे श्रमण, जो संघ के नायक होते हैं और जो स्वयं पंचाचार का पालन करते हुए साधु-संघ में भी आचार पलवाते हैं, उन्हें आचार्य कहते हैं। ये 36 गुणों के धारक होते हैं।

प्र. 12. उपाध्याय किसे कहते हैं?

उत्तर वे श्रमण, जो स्वयं शास्त्रों का अध्ययन करते हैं और दूसरों को अध्ययन करवाते हैं, उन्हें उपाध्याय कहते हैं। ये 25 गुणों के धारक होते हैं।

प्र. 13. साधु किसे कहते हैं?

उत्तर गृहस्थ धर्म का त्याग कर जो पाँच महाव्रत-1. अहिंसा, 2. सत्य, 3. अचौर्य, 4. ब्रह्मचर्य और 5. अपरिग्रह को पालते हैं एवं शास्त्रों में बतलाये गये समस्त आचार सम्बन्धी नियमों का पालन करते हैं, उन्हें साधु कहते हैं। ये 27 गुणों के धारक होते हैं।

प्र. 14. तिक्खुत्तो के पाठ का क्या प्रयोजन है?

उत्तर यह गुरुवन्दन सूत्र है। आध्यात्मिक साधना में गुरु का पद सबसे ऊँचा है। संसार के प्राणिमात्र के मन में रहे हुए अज्ञान अन्धकार को दूर करके ज्ञानरूपी प्रकाश फैलाने वाले गुरू हैं। मुक्ति के मार्ग पर गुरु ही ले जाते हैं। ऐसे गुरूदेव की विनयपूर्वक वन्दना करना ही इस पाठ का प्रयोजन है।

प्र. 15. तिक्खुत्तो के पाठ का दूसरा नाम क्या है?

उत्तर तिक्खुत्तो के पाठ का दूसरा नाम गुरुवन्दन सूत्र है।

प्र. 16. तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वन्दना क्यों करते हैं?

उत्तर भगवती सूत्र 3/1 में भी उल्लेख है कि बलिचंचा राजधानी के अनेक असुरों, देवों तथा देवियों ने तामली तापस की तिक्खुत्तो के पाठ से आवर्तन देते हुए तीन बार वन्दना की। भगवती सूत्र 12/1 में उल्लेख है कि श्रमणोपासक शंखजी व पुष्कलीजी ने, भगवान महावीर को तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा पूर्वक वन्दना की।

इनसे स्पष्ट है कि तीन बार वन्दना करने की प्राचीन परम्परा रही है, जन-सामान्य में यही विधि प्रचलित रही है। इसके साथ ही हमारे गुरु भगवन्त सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन तथा सम्यक् चारित्र इन तीन रत्नों के धारक होते हैं। उन तीन रत्नों के प्रति आदर-बहुमान प्रकट करने तथा वे तीन रत्न हमारे जीवन में भी प्रकट हो, इसलिए भी तीन बार वन्दना की जाती है।

प्र. 17. तिक्खुत्तो के पाठ से वन्दना करते समय आवर्तन किस प्रकार दिये जाने चाहिए?

उत्तर तिक्खुत्तो का पाठ बोलते तिक्खुत्तो शब्द के उच्चारण के साथ ही दोनों हाथ ललाट के बीच में रखने चाहिए। आयाहिणं शब्द के उच्चारण के साथ अपने दोनों हाथ अपने ललाट के बीच में से अपने स्वयं के दाहिने (Right) कान की ओर ले जाते हुए गले के पास से होकर बायें (Left) कान की ओर घुमाते हुए पुन: ललाट के बीच में लाना चाहिए। इस प्रकार एक आवर्तन पूरा करना चाहिए। इसी प्रकार से पयाहिणं और करेमि शब्द बोलते हुए भी एक-एक आवर्तन पूरा करना, इस प्रकार तिक्खुत्तो का एक बार पाठ बोलने में तीन आवर्तन देने चाहिए। तीनों बार तिक्खुत्तो के पाठ से इसी प्रकार तीन-तीन आवर्तन देने चाहिए।

प्र. 18. आवर्तन देने की विधि को सरल तरीके से कैसे समझ सकते हैं?

उत्तर आवर्तन देने की विधि को सरलता से इस प्रकार समझा जा सकता है कि जैसे हम उत्तर या पूर्व दिशा में मुँह करके खड़े हैं अथवा गुरुदेव के सम्मुख खड़े हैं, तब हमारे सामने घड़ी मानकर जिस प्रकार घड़ी में सूई घूमती है ठीक उसी प्रकार हमें भी आवर्तन देने चाहिए। जिस प्रकार मांगलिक कार्यों में आरती उतारी जाती है, मन्दिरों में परिक्रमा दी जाती है, उसी क्रम से आवर्तन देने चाहिए। अन्य भी लौकिक उदाहरणों से

हम समझ सकते हैं कि जैसे घट्टी चलाने की क्रिया, चरखा घुमाने की क्रिया, रोटी बेलने का क्रम, वाहनों की गति दर्शाने वाला मीटर जिस क्रम से आगे बढ़ता है, ठीक इसी प्रकार आवर्तन हमें अपने ललाट के मध्य से प्रारंभ करते हुए अपने बायें से दाहिनी ओर (Left to Right) ले जाते हुए देने चाहिए।

प्र. 19. वन्दना करते समय किन-किन बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए?

उत्तर वन्दना करते समय निम्न बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए–

1. वन्दना गुरुदेव के सामने खड़े होकर करना चाहिए। जहाँ तक हो सके उनके पीछे खड़े होकर वन्दना नहीं करना चाहिए।
2. यदि गुरुदेव सामने नहीं हो तो पूर्व दिशा (East) उत्तर दिशा (North) अथवा ईशान कोण (उत्तर पूर्व दिशा के बीच में) (Center of East North) में मुख करके खड़े होकर वन्दना करना चाहिए।
3. आसन से नीचे उतरकर वन्दना करना चाहिए, आसनादि पर खड़े होकर वन्दना नहीं करना चाहिए।
4. गुरुदेव सामने हो अथवा नहीं हो आवर्तन देने का तरीका एक समान ही अर्थात् ललाट के मध्य में दोनों हाथ रखकर अपने स्वयं के बायें से दाहिनी ओर दोनों हाथों को घुमाते हुए आवर्तन देने चाहिए।

5. तिक्खुत्तो के पाठ से वन्दना करते समय आवर्तन देने के पश्चात् 'वंदामि' शब्द नीचे बैठकर दोनों हाथ जोड़ते हुए बोलना चाहिए। 'नमंसामि' शब्द का उच्चारण करते पाँचों अंग (दोनों हाथ, दोनों घुटने और मस्तक) गुरुदेव के चरणों में झुकाना चाहिए। इसी प्रकार इस पाठ का अन्तिम शब्द 'मत्थएण वंदामि' बोलते समय भी पंचांग गुरुदेव के चरणों में झुकाना चाहिए।

6. गुरुदेव को स्वाध्याय में, वाचना में, कायोत्सर्ग में, साधनादि संयम चर्या में व्यवधान नहीं हो इस बात का ध्यान रखते हुए वन्दना करनी चाहिए।

7. जब गुरु भगवन्त गौचरी कर रहे हों, तपस्या, वृद्धावस्था, बीमारी अथवा अन्य किसी भी कारण से सोये हुए हों, आवश्यक क्रिया कर रहे हों, गोचरी लेने जा रहे हों, तब भी गुरुदेव के निकट जाकर वन्दना करना विवेकपूर्ण नहीं माना जाता है।

8. श्रावक–श्राविकाओं के ज्ञान–ध्यान में, प्रवचन–श्रवण आदि में बाधा नहीं हो, इसका पूरा विवेक रखते हुए वन्दना करनी चाहिए।

प्र. 20. आवर्तन तीन बार क्यों किये जाते हैं?

उत्तर मन, वचन और काया से वन्दनीय की पर्युपासना करने के लिए तीन बार आवर्तन किये जाते हैं।

प्र. 21. तिक्खुत्तो के पाठ में 'वंदामि' और 'नमंसामि' शब्दों का साथ-साथ प्रयोग क्यों किया है?

उत्तर तिक्खुत्तो के पाठ में 'वंदामि' का अर्थ है वन्दना करता हूँ और 'नमंसामि' का अर्थ है–नमस्कार करता हूँ। वन्दना में वचन द्वारा गुरुदेव का गुणगान किया जाता है, किन्तु नमस्कार में पाँचों अंगों को नमाकर काया द्वारा नमन किया जाता है।

प्र. 22. तिक्खुत्तो के पाठ में आये हुए 'सक्कारेमि' और 'सम्माणेमि' का क्या अर्थ है?

उत्तर 'सक्कारेमि' का अर्थ है–गुणवान पुरुषों को वस्त्र, पात्र, आहार, आसन आदि देकर उनका सत्कार करना। 'सम्माणेमि' का अर्थ है–गुणवान पुरुषों का मन और आत्मा से बहुमान करना।

प्र. 23. पर्युपासना कितने प्रकार की होती है?

उत्तर पर्युपासना तीन प्रकार की होती है–

1. विनम्र आसन से सुनने की इच्छा सहित वन्दनीय के सम्मुख हाथ जोड़कर बैठना, कायिक पर्युपासना है। 2. उनके उपदेश के वचनों का वाणी द्वारा सत्कार करते हुए समर्थन करना, वाचिक पर्युपासना है। 3. उपदेश के प्रति अनुराग रखते हुए मन को एकाग्र रखना, मानसिक पर्युपासना हैं।

प्र. 24. पर्युपासना से क्या-क्या लाभ हैं?

उत्तर सम्यक् चारित्र पालने वाले श्रमण–निर्ग्रन्थों की पर्युपासना करने से अशुभ कर्मों की निर्जरा होती है और महान् पुण्य का उपार्जन होता है।

प्र. 25. वन्दन करने से किस गुण की प्राप्ति होती है?

उत्तर वन्दन करने से जीव नीच गोत्रकर्म का क्षय करता है और उच्च गोत्रकर्म का बन्ध करता है, फिर वह स्थिर सौभाग्यशाली होता है, उसकी आज्ञा सफल होती है तथा वह दाक्षिण्यभाव अर्थात् लोकप्रियता को प्राप्त कर लेता है।

प्र. 26. 'इरियावहिया' के पाठ का क्या प्रयोजन है?

उत्तर 'आलोचना सूत्र' या 'इरियावहिया' के पाठ से गमनागमन के दोषों की शुद्धि की जाती है। गमनागमन करते हुए प्रमादवश यदि किसी जीव को पीड़ा पहुँची हो, तो इस पाठ के द्वारा खेद प्रकट किया जाता है।

प्र. 27. 'इरियावहिया' के पाठ में कितने प्रकार के जीवों की विराधना का उल्लेख है?

उत्तर इरियावहिया के पाठ में पाँच प्रकार के जीव–एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय की विराधना का उल्लेख है।

प्र. 28. 'इरियावहिया' के पाठ में विराधना (जीव-हिंसा) के कितने प्रकार बतलाये हैं और कौन-कौन से हैं?

उत्तर 'इरियावहिया' के पाठ में विराधना दस प्रकार की बतलायी है, यथा–1. अभिहया, 2. वत्तिया, 3. लेसिया, 4. संघाइया, 5. संघट्टिया, 6. परियाविया, 7. किलामिया, 8. उद्दविया, 9. ठाणाओ ठाणं संकामिया और 10. जीवियाओ ववरोविया।

प्र. 29. 'तस्सउत्तरी' पाठ का दूसरा नाम क्या है?

उत्तर 'तस्सउत्तरी' पाठ को 'उत्तरीकरण सूत्र' एवं 'आत्म-शुद्धि' का पाठ भी कहते हैं।

प्र. 30. 'तस्सउत्तरी' के पाठ का क्या प्रयोजन है?

उत्तर 'तस्सउत्तरी' के पाठ से साधक कायोत्सर्ग करने की प्रतिज्ञा करता है, जिससे वह आत्मा को शरीर की आसक्ति से पृथक् कर (आत्मा को) कषायों से मुक्त कर सके।

प्र. 31. कायोत्सर्ग की क्या काल मर्यादा है?

उत्तर कायोत्सर्ग की कोई निश्चित काल मर्यादा नहीं है। इसकी पूर्ति 'णमो अरिहंताणं' शब्द बोलकर की जाती है। कायोत्सर्ग काया को स्थिर करके, मौन धारण करके और मन को एकाग्र करके किया जाता है।

प्र. 32. कायोत्सर्ग के कितने आगार हैं?

उत्तर कायोत्सर्ग के 1. ऊससिएणं, 2. नीससिएणं, 3. खासिएणं, 4. छीएणं, 5. जंभाइएणं, 6. उड्डुएणं, 7. वायनिसग्गेणं, 8. भमलीए, 9. पित्तमुच्छाए, 10. सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं, 11. सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं और 12. सुहुमेहिं दिट्ठि-संचालेहिं, ये 12 आगार हैं।

प्र. 33. 'तस्सउत्तरी' पाठ में 'अभग्गो-अविराहिओ' का क्या अर्थ है?

उत्तर तस्स उत्तरी के पाठ में 'अभग्गो' का अर्थ है-काउस्सग्ग खण्डित नहीं होना और अविराहिओ का अर्थ है-काउस्सग्ग

भंग नहीं होना। काउस्सग्ग में आंशिक विराधना न होना 'अभग्गो' तथा सर्व विराधना न होना 'अविराहिओ' कहलाता है।

प्र. 34. 'लोगस्स' पाठ क्या प्रयोजन है?

उत्तर 'लोगस्स' पाठ में भगवान ऋषभदेव से लेकर भगवान महावीर तक चौबीस तीर्थङ्करों की स्तुति की गई है। ये हमारे इष्टदेव हैं। इन्होंने अहिंसा और सत्य का मार्ग बताया है। इनकी भाव पूर्वक स्तुति करने से जीवन पवित्र और दिव्य बनता है।

प्र. 35. 'लोगस्स' पाठ का दूसरा नाम क्या है?

उत्तर 'लोगस्स' पाठ का दूसरा नाम 'उत्कीर्त्तन सूत्र' और 'चतुर्विंशतिस्तव' है।

प्र. 36. 'करेमि भंते' पाठ का क्या प्रयोजन है?

उत्तर 'करेमि भंते' पाठ से सभी पापों का त्याग कर सामायिक व्रत लेने की प्रतिज्ञा की जाती है। इसे सामायिक-प्रतिज्ञा सूत्र भी कहते हैं।

प्र. 37. सामायिक से क्या लाभ है?

उत्तर सामायिक द्वारा पापों के आस्रव को रोककर संवर की आराधना होती है और सामायिक काल में स्वाध्याय करने से कर्मों की निर्जरा होती है।

प्र. 38. सामायिक का क्या फल बताया गया है?

उत्तर **दिवसे दिवसे लक्खं, देइ सुवण्णस्स खंडियं एगो।**
इयरो पुण सामाइयं, न पहुप्पहो तस्स कोई।।

बीस मन की खण्डी होती है। ऐसी लाख-लाख खण्डी सुवर्ण,

लाख वर्ष पर्यन्त प्रतिदिन कोई दान दे और दूसरा एक सामायिक कर ले तो इतना सुवर्ण दान देने वाले का पुण्य एक सामायिक के बराबर नहीं हो सकता। क्योंकि दान से पुण्य की वृद्धि होती है और पुण्य की वृद्धि से सुख-सम्पदा की प्राप्ति होती है, किंतु सामायिक भवभ्रमण से छुड़ाकर मोक्ष का अनंत सुख प्राप्त कराने वाली है।

प्र. 38. सामायिक व्रत कितने काल, कितने करण और कितने योग से किया जाता है?

उत्तर सामायिक व्रत एक मुहूर्त्त यानी 48 मिनट के लिए, 2 करण (पाप स्वयं नहीं करना और दूसरे से नहीं कराना) और 3 योग (मन, वचन और काया) से किया जाता है।

प्र. 39. 'नमोत्थु णं' पाठ का क्या प्रयोजन है?

उत्तर इस पाठ के द्वारा सिद्ध और अरिहन्त देवों के अनेक गुणों का भाव पूर्वक वर्णन करते हुए उनकी स्तुति की जाती है तथा उनके गुण हमारी आत्मा में भी प्रकट करना, मुख्य प्रयोजन है।

प्र. 40. 'नमोत्थु णं' पाठ का दूसरा नाम क्या है?

उत्तर इस पाठ को 'शक्रस्तव' पाठ भी कहते हैं, क्योंकि प्रथम देवलोक के इन्द्र-शक्रेन्द्र भी तीर्थङ्करों-अरिहन्तों की इसी पाठ से स्तुति करते हैं। इसका एक और नाम 'प्रणिपात सूत्र' भी है। प्रणिपात का अर्थ-अत्यन्त विनम्रता एवं बहुमानपूर्वक अरिहन्त-सिद्ध की स्तुति करना है।

प्र. 41. पहला 'नमोत्थु णं' किसको दिया जाता है?

उत्तर पहला 'नमोत्थु णं' सिद्ध भगवन्तों को दिया जाता है।

प्र. 42. दूसरा 'नमोत्थु णं' किसको दिया जाता है?

उत्तर दूसरा 'नमोत्थु णं' अरिहंत भगवंतों को दिया जाता है।

प्र. 43. नवकार मन्त्र में पहले अरिहन्तों को नमस्कार किया गया पर 'नमोत्थु णं' में पहले सिद्धों को नमस्कार क्यों किया गया?

उत्तर नवकार मन्त्र में जीवों पर उपकार की दृष्टि से पहले अरिहन्तों को नमस्कार किया गया, किन्तु 'नमोत्थु णं' में शक्रेन्द्र महाराज ने आत्मिक गुणों में बड़े की दृष्टि से पहले सिद्धों को नमस्कार किया है।

प्र. 44. सामायिक के उपकरण कौन-कौन से हैं?

उत्तर 1. बैठने हेतु सूती या ऊनी आसन। 2. पहनने और ओढ़ने के लिए बिना सिले हुए दो सूती वस्त्र। 3. मुँहपत्ती। 4. पूँजनी। 5. स्वाध्याय हेतु धार्मिक पुस्तकें आदि। महिलाओं के लिए सादे वस्त्र व अन्य उपकरण ऊपर लिखे अनुसार।

प्रतिक्रमण-प्रश्नोत्तर

प्र. 1. प्रतिक्रमण की क्या-क्या परिभाषाएँ प्रचलित हैं?

उत्तर (1) कृत पापों की आलोचना करना, निंदा करना।

(2) व्रत, प्रत्याख्यान आदि में लगे दोषों से निवृत्त होना।

(3) अशुभ योग से निवृत्त होकर नि:शल्य भाव से शुभयोग में उत्तरोत्तर प्रवृत्त होना।

(4) मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय और अशुभ योग से आत्मा को हटाकर फिर से सम्यग्दर्शन, ज्ञान व चारित्र में लगाना प्रतिक्रमण है।

(5) पाप क्षेत्र से अथवा पूर्व में ग्रहण किये गये व्रतों की मर्यादा के अतिक्रमण से वापस आत्म–शुद्धि क्षेत्र में लौट आने को प्रतिक्रमण कहते हैं।

प्र. 2. प्रतिक्रमण कितने प्रकार का होता है?

उत्तर प्रतिक्रमण दो प्रकार का होता है–(1) द्रव्य प्रतिक्रमण (2) भाव प्रतिक्रमण। (1) द्रव्य प्रतिक्रमण–उपयोग रहित, केवल परम्परा के आधार पर पुण्य–फल की इच्छा रूप प्रतिक्रमण करना अर्थात् अपने दोषों की, मात्र पाठों को बोलकर शब्द रूप में आलोचना कर लेना, दोष–शुद्धि का कुछ भी विचार नहीं करना, 'द्रव्य प्रतिक्रमण' है। (2) भाव प्रतिक्रमण–उपयोग सहित, लोक–परलोक की चाह रहित, यश–कीर्ति–सम्मान आदि की अभिलाषा नहीं रखते हुए, मात्र अपनी आत्मा को कर्म–मल से विशुद्ध बनाने के लिए जिनाज्ञा अनुसार किया जाने वाला प्रतिक्रमण 'भाव प्रतिक्रमण' है।

प्र. 3. प्रतिक्रमण आवश्यक क्यों है?

उत्तर सम्यक्त्व ग्रहण करते समय यदि पहले किये हुए पापों का पश्चात्ताप रूप प्रतिक्रमण नहीं किया जाता है तो पूर्व के पापों का अनुमोदन चालू रहता है। अत: सम्यक्त्व में दृढ़ता नहीं आती। प्रमाद व अज्ञान आदि से अतिचार रूप काँटे प्राय: लग ही जाते हैं। यदि उनको दूर न किया जाय तो जीव विराधक

बन जाता है। अत: विराधकता व समकित के विनाश से बचने के लिए प्रतिक्रमण आवश्यक है।

प्र. 4. प्रतिक्रमण का सार किस पाठ में आता है? कारण सहित स्पष्ट कीजिए।

उत्तर प्रतिक्रमण का सार इच्छामि ठामि के पाठ में आता है। क्योंकि पूरे प्रतिक्रमण में ज्ञान, दर्शन, चारित्राचारित्र तथा तप के अतिचारों की आलोचना की जाती है। इच्छामि ठामि के पाठ में भी इनकी संक्षिप्त आलोचना हो जाती है, इस कारण इसे प्रतिक्रमण का सार–पाठ कहा जाता है।

प्र. 5. प्रतिक्रमण करने से क्या-क्या लाभ हैं?

उत्तर (1) लगे दोषों की निवृत्ति होती है।

(2) प्रवचन माता की आराधना होती है।

(3) तीर्थङ्कर नाम कर्म का उपार्जन होता है।

(4) व्रतादि ग्रहण करने की भावना जगती है।

(5) अपने दोषों की आलोचना करके व्यक्ति आराधक बन जाता है।

(6) इससे सूत्र की स्वाध्याय होती है।

(7) अशुभ कर्मों के बन्धन से बचते हैं।

प्र. 6. पाँच प्रतिक्रमण मुख्य रूप से कौन से पाठ से होते हैं?

उत्तर मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण–अरिहंतो महदेवो, दंसण समकित के पाठ से।

अव्रत का प्रतिक्रमण–पाँच महाव्रत और पाँच अणुव्रत से।

प्रमाद का प्रतिक्रमण–आठवाँ व्रत, 18 पापस्थान के पाठ से।

कषाय का प्रतिक्रमण–अठारह पापस्थान का पाठ, क्षमापना–पाठ, इच्छामि ठामि से।

अशुभ योग का प्रतिक्रमण–इच्छामि ठामि, अठारह पापस्थान का पाठ, नवमें व्रत से।

प्र. 7. मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय व अशुभ योग का प्रतिक्रमण किसने किया?

उत्तर मिथ्यात्व का श्रेणिक राजा ने, अव्रत का प्रदेशी राजा ने, प्रमाद का शैलक राजर्षि ने, कषाय का चण्डकौशिक सर्प ने और अशुभ योग का प्रतिक्रमण प्रसन्नचन्द्र राजर्षि ने किया।

प्र. 8. व्रत और पच्चक्खाण में क्या अन्तर है?

उत्तर **व्रत**–विधि रूप प्रतिज्ञा व्रत है। जैसे–मैं सामायिक करता हूँ। साधु के लिए 5 महाव्रत होते हैं। श्रावक के लिए 12 व्रत होते हैं। व्रत मात्र चारित्र में ही है, पच्चक्खाण–चारित्र व तप दोनों में आते हैं।

पच्चक्खाण–निषेध रूप प्रतिज्ञा जैसे कि सावद्य योगों का त्याग करता हूँ अथवा आहार को वोसिराता हूँ।

व्रत–करण कोटि के साथ होते हैं। पच्चक्खाण करण, कोटि बिना भी होते हैं। व्रत लेने के पाठ के अन्त में तस्स भंते से अप्पाणं वोसिरामि आता है। (आहार के) पच्चक्खाण में अन्नत्थणाभोगेणं से वोसिरामि आता है।

प्र. 9. प्रतिक्रमण करने से क्या आत्मशुद्धि (पाप का धुलना) हो जाती है?

उत्तर प्रतिक्रमण में दैनिकचर्या आदि का अवलोकन किया जाता है।

आत्मा में रहे हुए आस्रवद्वार (अतिचारादि) रूप छिद्रों को देखकर रोक दिया जाता है। जिस प्रकार आत्मा पर लगे अतिचारादि मलिनता को पश्चात्ताप आदि के द्वारा साफ किया जाता है। व्यवहार में भी अपराध को सरलता से स्वीकार करने पर, पश्चात्ताप आदि करने पर अपराध हल्का हो जाता है। जैसे ''माफ कीजिए (सॉरी)'' आदि कहने पर माफ कर दिया जाता है। उसी प्रकार अतिचारों की निन्दा करने से, पश्चात्ताप करने से आत्म-शुद्धि (पाप का धुलना) हो जाती है। दैनिक जीवन में दोषों का सेवन पुन: नहीं करने की प्रतिज्ञा से आत्म-शुद्धि होती है।

प्र. 10. जिसने व्रत धारण नहीं किये हैं, उसके लिए क्या प्रतिक्रमण करना आवश्यक है?

उत्तर जिसने व्रत धारण नहीं किये हैं, उसको भी प्रतिक्रमण अवश्य करना चाहिए। क्योंकि आवश्यक सूत्र बत्तीसवाँ आगम बताया गया है। आगम का स्वाध्याय आत्म-कल्याण तथा निर्जरा का कारण है। प्रतिक्रमण एक ऐसी औषधि के समान है जिसका प्रतिदिन सेवन करने से विद्यमान रोग शान्त हो जाते हैं, रोग नहीं होने पर उस औषधि के प्रभाव से वर्ण, रूप, यौवन और लावण्य आदि में वृद्धि होती है और भविष्य में रोग नहीं होते। इसी तरह यदि दोष लगे हों तो प्रतिक्रमण द्वारा उनकी शुद्धि हो जाती है और दोष नहीं लगे हों तो प्रतिक्रमण भावों और चारित्र की विशेष शुद्धि करता है। इसलिए प्रतिक्रमण सभी के लिए समान रूप से आवश्यक है।

प्र. 11. आवश्यक सूत्र का प्रसिद्ध दूसरा नाम क्या है?

उत्तर प्रतिक्रमण सूत्र।

प्र. 12. आवश्यक सूत्र को प्रतिक्रमण सूत्र क्यों कहा जाता है?

उत्तर कारण कि आवश्यक सूत्र के छ: आवश्यकों में से प्रतिक्रमण आवश्यक सबसे बड़ा एवं महत्त्वपूर्ण है। इसलिये वह प्रतिक्रमण के नाम से प्रचलित हो गया है। दूसरा कारण वास्तव में प्रथम तीन आवश्यक प्रतिक्रमण की पूर्व क्रिया के रूप में और शेष दो आवश्यक उत्तर क्रिया के रूप में किये जाते हैं।

प्र. 13. प्रतिक्रमण में प्रकाश व अन्धकार का पाठ कौनसा है?

उत्तर दर्शन समकित का पाठ प्रकाश का व अठारह पापस्थान का पाठ अन्धकार का है।

प्र. 14. प्रतिक्रमण में जावज्जीवाए, जावनियमं तथा जाव अहोरत्तं शब्द कहाँ-कहाँ आते हैं?

उत्तर जावज्जीवाए–पहले से आठवें व्रत में व बड़ी संलेखना के पाठ में।
जावनियमं–नवमें व्रत में।
जाव अहोरत्तं–दसवें व ग्यारहवें व्रत में।

प्र. 15. काल की अपेक्षा प्रतिक्रमण कितने प्रकार का व कौन-कौनसा है?

उत्तर काल की अपेक्षा प्रतिक्रमण पाँच प्रकार का है–(1) दैवसिक प्रतिक्रमण (2) रात्रिक प्रतिक्रमण (3) पाक्षिक प्रतिक्रमण (4) चातुर्मासिक प्रतिक्रमण (5) सांवत्सरिक प्रतिक्रमण।

प्र. 16. प्रतिक्रमण के छ: आवश्यकों को देव, गुरु व धर्म में विभाजित किस प्रकार कर सकते हैं?

उत्तर दूसरा आवश्यक–लोगस्स–देव का।
तीसरा आवश्यक–इच्छामि खमासमणो–गुरु का।
शेष चार आवश्यक–सामायिक, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग व प्रत्याख्यान धर्म के हैं।

प्र. 17. अकल्पनीय व अकरणीय में क्या अन्तर है?

उत्तर सावद्य भाषा बोलना आदि प्रवृत्तियाँ ''अकल्पनीय'' हैं तथा अयोग्य सावद्य आचरण करना ''अकरणीय'' हैं। इस प्रकार अकल्पनीय में अकरणीय का समावेश हो सकता है, पर अकल्पनीय का समावेश अकरणीय में नहीं होता।

प्र. 18. आगम किसे कहते हैं?

उत्तर जो आप्त अर्थात् सर्वज्ञों की वाणी हो, उसे आगम कहते हैं। आगम आप्त पुरुषों द्वारा कथित, गणधरों द्वारा ग्रथित तथा मुनियों द्वारा आचरित होते हैं।

प्र. 19. आगम कितने प्रकार के व कौन-कौन से हैं?

उत्तर आगम तीन प्रकार के हैं–(1) सुत्तागमे (सूत्रागम) (2) अत्थागमे (अर्थागम) (3) तदुभयागमे (तदुभयागम)।

प्र. 20. सूत्रागम किसे कहते हैं?

उत्तर तीर्थङ्कर भगवन्तों ने अपने श्रीमुख से जो भाव फरमाए, उन्हें सुनकर गणधर भगवन्तों ने जिन आचारांग आदि आगमों की रचना की, उस सूत्र रूप आगम को 'सूत्रागम' कहते हैं।

प्र. 21. अर्थागम किसे कहते हैं?

उत्तर तीर्थङ्कर परमात्मा ने अपने श्रीमुख से जो भाव प्रकट किये, उस भाव रूप आगम को 'अर्थागम' कहते हैं। अथवा सूत्रों के

जो हिन्दी आदि भाषाओं में अनुवाद किये गये हैं, उन्हें भी अर्थागम कहते हैं।

प्र. 22. तदुभयागम किसे कहते हैं?

उत्तर सूत्रागम और अर्थागम ये दोनों मिलकर तदुभयागम कहलाते हैं।

प्र. 23. उच्चारण की अशुद्धि से क्या-क्या हानियाँ हैं?

उत्तर (1) उच्चारण की अशुद्धि से कई बार अर्थ सर्वथा नष्ट हो जाता है। (2) कई बार विपरीत अर्थ हो जाता है। (3) कई बार आवश्यक अर्थ में कमी रह जाती है। (4) कई बार सत्य किन्तु अप्रासंगिक अर्थ हो जाता है, इस प्रकार अनेक हानियाँ हैं।

उदाहरण–संसार में से एक बिन्दु कम बोलने पर ससार (सार सहित) हो जाता है या शास्त्र में से एक मात्रा कम कर देने पर शस्त्र हो जाता है। अत: उच्चारण अत्यन्त शुद्ध करना चाहिए।

प्र. 24. अकाल में स्वाध्याय और काल में अस्वाध्याय से क्या हानि है?

उत्तर जैसे जो राग या रागिनी जिस काल में गाना चाहिए, उससे भिन्न काल में गाने से अहित होता है, वैसे ही अकाल में स्वाध्याय करने से अहित होता है। यथाकाल स्वाध्याय न करने से ज्ञान में हानि तथा अव्यवस्थितता का दोष उत्पन्न होता है। अकाल में स्वाध्याय करने एवं काल में स्वाध्याय न करने में शास्त्राज्ञा का उल्लंघन होता है। अत: इन अतिचारों का वर्जन करके यथासमय व्यवस्थित रीति से स्वाध्याय करना चाहिए।

प्र. 25. ज्ञान व ज्ञानी की सेवा क्यों करनी चाहिए?

उत्तर ज्ञान व ज्ञानी की सेवा पाँच कारणों से करनी चाहिए–(1) हमें नवीन ज्ञान की प्राप्ति होती है। (2) हमारे सन्देह का निवारण होता है। (3) सत्यासत्य का निर्णय होता है। (4) अतिचारों की शुद्धि होती है। (5) नवीन प्रेरणा से हमारे सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र व तप शुद्ध तथा दृढ़ बनते हैं।

प्र. 26. सम्यक्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर सुदेव, सुगुरु, सुधर्म पर श्रद्धा रखना सम्यक्त्व कहलाता है। जिनेश्वर भगवान द्वारा प्ररूपित तत्त्वों में यथार्थ विश्वास करना सम्यक्त्व है। मिथ्यात्व मोहनीय आदि सात प्रकृतियों में क्षय, उपशम अथवा क्षयोपशम से उत्पन्न आत्मा के श्रद्धा रूप परिणामों को 'सम्यक्त्व' कहते हैं।

प्र. 27. सुदेव कौन हैं?

उत्तर जो राग–द्वेष से रहित हैं, अठारह दोष रहित और बारह गुण सहित हैं। सर्वज्ञ सर्वदर्शी हैं। जिनकी वाणी में जीवों का एकान्त हित है। जिनकी कथनी व करनी में अन्तर नहीं है। जो देवों के भी देव हैं। ऐसे तीन लोक के वंदनीय, पूजनीय, परम आराध्य, परमेश्वर प्रभु अरिहंत और सिद्ध हमारे सुदेव हैं।

प्र. 28. सुगुरु कौन हैं?

उत्तर जो तीन करण तीन योग से अहिंसादि पंच महाव्रत का पालन करते हैं। कंचन–कामिनी के त्यागी हैं। पाँच समिति, तीन गुप्ति का निर्दोष पालन करते हैं। भिक्षाचर्या द्वारा जीवन–निर्वाह करते हुए स्वयं संसार–सागर से तिरते हैं, अन्य जीवों

को भी तिरने हेतु जिनेश्वर भगवान द्वारा प्ररूपित धर्म का उपदेश देते हैं, वे साधु ही सुगुरु हैं।

प्र. 29. सच्चा धर्म कौनसा है?

उत्तर आत्मा को दुर्गति से बचाकर मोक्ष की ओर ले जाने वाले विशुद्ध मार्ग को सुधर्म कहते हैं। जिनेश्वर भगवान द्वारा प्ररूपित अहिंसा, संयम और तप का समन्वित रूप सच्चा धर्म है। जीवात्मा द्वारा सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि निजगुणों का आराधन करना भी सच्चा धर्म है।

प्र. 30. मिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उत्तर मोह के उदय से तत्त्वों की सही श्रद्धा नहीं होना या विपरीत श्रद्धा होना मिथ्यात्व है। अथवा देव–गुरु–धर्म एवं आत्म–स्वरूप सम्बन्धी विपरीत श्रद्धान होना 'मिथ्यात्व' कहलाता है।

प्र. 31. जिन वचन में शंका क्यों होती है, उसे कैसे दूर करना चाहिए?

उत्तर श्री जिन वचन में कई स्थानों पर सूक्ष्म तत्त्वों का विवेचन हुआ है। कई स्थानों पर नय और निक्षेप के आधार पर वर्णन हुआ है। वह हमारी स्थूल बुद्धि से समझ में नहीं आता, इस कारण शंकाएँ हो जाती हैं। अत: हमें अरिहन्त भगवान के केवल ज्ञान व वीतरागता का विचार करके तथा अपनी बुद्धि की मंदता का विचार करके, गुरुजनों आदि से समाधान प्राप्त कर ऐसी शंकाओं को दूर करना चाहिए।

प्र. 32. पाप किसे कहते हैं?

उत्तर जो आत्मा को मलिन करे, उसे पाप कहते हैं। जो अशुभ योग से सुख पूर्वक बाँधा जाता है और दु:खपूर्वक भोगा जाता है,

वह पाप है। पाप अशुभ प्रकृतिरूप है, पाप का फल कड़वा, कठोर और अप्रिय होता है। पाप के मुख्य अठारह भेद हैं।

प्र. 33. पापों अथवा दुर्व्यसनों का सेवन करने से इस भव, परभव में क्या-क्या हानियाँ होती हैं?

उत्तर (1) पापों अथवा दुर्व्यसनों के सेवन करने से शरीर नष्ट हो जाता है, प्राणी को तरह-तरह के रोग घेर लेते हैं। (2) स्वभाव बिगड़ जाता है। (3) घर में स्त्री-पुत्रों की दुर्दशा हो जाती है। (4) व्यापार चौपट हो जाता है। (5) धन का सफाया हो जाता है। (6) मकान-दुकान नीलाम हो जाते हैं। (7) प्रतिष्ठा धूल में मिल जाती है। (8) राज्य द्वारा दण्डित होते हैं (9) कारागृह में जीवन बिताना पड़ता है। (10) फाँसी पर भी लटकना पड़ सकता है। (11) आत्मघात करना पड़ता है। इस तरह अनेक प्रकार की हानियाँ इस भव में होती हैं। परभव में भी वह नरक, निगोद आदि में उत्पन्न होता है। वहाँ उसे बहुत कष्ट उठाने पड़ते हैं। कदाचित् मनुष्य बन भी जाय तो हीन जाति-कुल में जन्म लेता है। अशक्त, रोगी, हीनांग, नपुंसक और कुरूप बनता है। वह मूर्ख, निर्धन, शासित और दुर्भागी रहता है। अत: पापों अथवा दुर्व्यसनों का त्याग करना ही श्रेष्ठ है।

प्र. 34. मिथ्यादर्शन शल्य क्या है?

उत्तर जिनेश्वर भगवन्तों द्वारा प्ररूपित सत्य पर श्रद्धा न रखना एवं असत्य का कदाग्रह रखना मिथ्यादर्शन शल्य है। यह शल्य सम्यग्दर्शन का घातक है।

प्र. 35. निदान शल्य किसे कहते हैं?

उत्तर धर्माचरण के द्वारा सांसारिक फल की कामना करना, भोगों की लालसा रखना अर्थात् धर्मकरणी का फल भोगों के रूप में प्राप्त करने हेतु अपने जप–तप–संयम को दाँव पर लगा देना 'निदान शल्य' कहलाता है।

प्र. 36. संज्ञा किसे कहते हैं?

उत्तर कर्मोदय की प्रबलता से होने वाली अभिलाषा, इच्छा 'संज्ञा' कहलाती है। आहार संज्ञा, भय संज्ञा, मैथुन संज्ञा व परिग्रह संज्ञा के रूप में ये चार प्रकार की होती है।

प्र. 37. विकथा किसे कहते हैं?

उत्तर संयम–जीवन को दूषित करने वाली कथा को 'विकथा' कहते हैं। स्त्री कथा, भक्त (भोजन) कथा, देश कथा और राज कथा के भेद से विकथा चार प्रकार की होती है।

प्र. 38. चारित्र किसे कहते हैं?

उत्तर चारित्र का अर्थ है–व्रत का पालन करना। आत्मा में रमण करना। जिसके द्वारा आत्मा के साथ होने वाले कर्म का आस्रव एवं बंध रुके एवं पूर्व कर्म निर्जरित हों, उसे चारित्र कहते हैं अथवा अठारह पापों का यावज्जीवन तीन करण–तीन योग से प्रत्याख्यान करना भी 'चारित्र' कहलाता है।

प्र. 39. जीव का जन्म-मरण किस अपेक्षा से माना गया है?

उत्तर प्राणों के संयोग से होने वाले नये भव की अपेक्षा से जन्म माना जाता है और प्राणों के वियोग से होने वाले पुराने भव की समाप्ति की अपेक्षा से मरण माना जाता है।

प्र. 40. जीव अपने कर्मानुसार मरते और दु:ख पाते हैं फिर मारने वाले को पाप क्यों लगता है?

उत्तर मारने वाले को मारने की दुष्ट भावना और मारने की दुष्ट प्रवृत्ति से पाप लगता है।

प्र. 41. श्रावक त्रस जीवों की हिंसा का त्याग क्यों करता है? त्रस की हिंसा से पाप अधिक क्यों होता है?

उत्तर त्रस की हिंसा से पाप अधिक होता है, क्योंकि त्रस जीवों में जीवत्व प्रत्यक्ष है तथा वे मारने पर बचने का प्रयास करते हैं। ऐसी दशा में जीवत्व प्रत्यक्ष होते हुए बलात् मारने से क्रूरता अधिक आती है। स्थावर जीवों को जितने पुण्य से स्पर्शनेन्द्रिय बल प्राण आदि मिलते हैं, उससे भी कहीं अधिक पुण्य कमाने पर एक त्रस जीव को एक जिह्वा–वचन आदि प्राण मिलते हैं। उन अनन्त पुण्य से प्राप्त प्राणों का वियोग होता है, इसलिए त्रस जीवों की हिंसा से पाप भी अधिक होता है।

प्र. 42. अहिंसा अणुव्रत का पालन कितने करण व योग से होता है?

उत्तर यद्यपि अहिंसा अणुव्रत का नियम श्रावक दो करण व तीन योग से लेता है पर इसका तीन करण, तीन योग से पालन का विवेक रखना चाहिए अर्थात् कोई निरपराध त्रस जीव को संकल्पपूर्वक मारे तो उसका मन–वचन–काया से अनुमोदन नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार अन्य व्रतों को भी तीन करण तीन योग से पालन करने का लक्ष्य रखना चाहिए।

प्र. 43. अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर जो पशु जितने समय तक जितना भार ढो सकता है, उससे भी अधिक समय तक उस पर भार लादना। या जो मनुष्य जितने समय तक जितना कार्य कर सकता है उससे भी अधिक समय तक उससे कार्य कराना, अतिभार है।

प्र. 44. आकुट्टी की बुद्धि से मारना किसे कहते हैं?

उत्तर कषायवश निर्दयतापूर्वक प्राणों से रहित करने, मारने की बुद्धि से मारना, आकुट्टी की बुद्धि से मारना कहलाता है।

प्र. 45. अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार किसे कहते हैं?

उत्तर अतिक्रम–व्रत की प्रतिज्ञा के विरुद्ध व्रत के उल्लंघन करने के विचार को अतिक्रम कहते हैं।

व्यतिक्रम–व्रत का उल्लंघन करने के लिए कायिकादि व्यापार प्रारम्भ करने को व्यतिक्रम कहते हैं।

अतिचार–व्रत को भंग करने की सामग्री इकट्ठी करना, व्रत भंग के निकट पहुँच जाना अतिचार है।

अनाचार–व्रत का सर्वथा भंग करना अनाचार है।

प्र. 46. मृषावाद कितने प्रकार का है?

उत्तर मृषावाद दो प्रकार का है–(1) सूक्ष्म और (2) स्थूल। (1) हँसी–मजाक या आमोद–प्रमोद में मामूली सा झूठ बोलने का अनुमोदन करना सूक्ष्म झूठ है। (2) कन्या सम्बन्धी, पशु सम्बन्धी, भूमि सम्बन्धी, धरोहर–गिरवी सम्बन्धी झूठी साक्षी देना आदि स्थूल मृषावाद है।

प्र. 47. रक्षा के लिए झूठी साक्षी देना या नहीं?

उत्तर रक्षा की भावना उत्तम है पर रक्षा के लिए भी सापराधी की झूठी साक्षी नहीं देना चाहिए। कदाचित् इससे कभी अन्य निरपराधी की मृत्यु भी हो सकती है। निरपराधी को बचाने के लिए भी झूठी साक्षी देना उचित नहीं है। भविष्य में इससे साक्षी देने वाले का विश्वास उठ जाता है। अत: झूठी साक्षी नहीं देना चाहिए।

प्र. 48. सहसब्भक्खाणे के अन्य प्रकार बताइए।

उत्तर जैसे क्रोधादि कषाय के आवेश में आकर बिना विचारे किसी पर हत्या, झूठ, चोरी आदि आरोप लगाना। सन्देह होने पर कुछ भी प्रमाण मिले बिना, सुनी सुनाई बात पर या शत्रुता निकालने के लिए या अपने पर आये आरोप को टालने के लिए आरोप लगाना आदि भी सहसब्भक्खाणे के प्रकार हैं।

प्र. 49. सच्ची बात प्रकट करना अतिचार कैसे ?

उत्तर स्त्री आदि की सत्य परन्तु गोपनीय बात प्रकट करने से उसके साथ विश्वासघात होता है, वह लज्जित होकर मर सकती है या राष्ट्र पर अन्य राष्ट्र का आक्रमण आदि हो सकता है। अत: विश्वासघात और हिंसा की अपेक्षा सत्य बात प्रकट करना भी अतिचार है।

प्र. 50. अदत्तादान किसे कहते हैं ?

उत्तर स्वामी की आज्ञा आदि न होते हुए भी उसकी वस्तु लेना अदत्तादान है।

प्र. 51. कूट तौल-माप किसे कहते हैं ?

उत्तर देने के हल्के और लेने के भारी, पृथक् तौल-माप रखना या

देते समय कम तौलकर देना, कम माप कर देना, इसी प्रकार कम गिनकर देना या खोटी कसौटी लगाकर कम देना। लेते समय अधिक तौलकर, अधिक मापकर, अधिक गिनकर तथा स्वर्णादि को कम बताकर लेना आदि।

प्र. 52. ब्रह्मचर्य किसे कहते हैं?

उत्तर ब्रह्मचर्य–ब्रह्म अर्थात् आत्मा और चर्य का अर्थ है–रमण करना। यानी आत्मा के अपने स्वरूप में रमण करना ब्रह्मचर्य है। इन्द्रियों और मन को विषयों में प्रवृत्त नहीं होने देना, कुशील से बचना, सदाचार का सेवन करना, आत्म–साधना में लगे रहना व आत्म–चिन्तन करना 'ब्रह्मचर्य' है।

प्र. 53. ब्रह्मचर्य-पालन के लिए किस प्रकार का चिन्तन करना चाहिए?

उत्तर ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ तप है। ब्रह्मचारी को देवता भी नमस्कार करते हैं। काम–भोग किंपाक फल और आशीविष के समान घातक हैं। ब्रह्मचर्य के अपालक रावण, जिनरक्षित, सूर्यकान्ता आदि की कैसी दुर्गति हुई? ब्रह्मचर्य के पालक जम्बू, मल्लिनाथ, राजीमती आदि का जीवन कैसा उज्ज्वल व आराधनीय बना, आदि चिन्तन करना चाहिए।

प्र. 54. परिग्रह किसे कहते हैं?

उत्तर किसी भी व्यक्ति एवं वस्तु पर मूर्च्छा, ममत्व होना परिग्रह है। खेत, घर, धन, धान्य, आभूषण, वस्त्र, वाहन, दास, दासी, कुटुम्ब, परिवार आदि का संग्रह रखना बाह्य परिग्रह है व क्रोध–मान–माया–लोभ–ममत्व आदि करना आभ्यन्तर परिग्रह है।

प्र. 55. परिग्रह-विरमण व्रत का मुख्य उद्देश्य क्या है?

उत्तर तृष्णा, इच्छा, मूर्च्छा कम कर सन्तोष रखना तथा पापजनक आरम्भ–समारम्भ का त्याग करना, उसमें कमी लाना ही परिग्रह–विरमण व्रत का मुख्य उद्देश्य है।

प्र. 56. साडीकम्मे (शकट कर्म) किसे कहते हैं?

उत्तर यन्त्रों के काम को शकट कर्म कहते हैं, जैसे गाड़ी आदि वाहन के, हलादि खेती के, चरखे आदि उत्पादन के यन्त्रों को बनाना, खरीदना व बेचने को साडीकम्मे कहते हैं।

प्र. 57. अनर्थ दण्ड किसे कहते हैं?

उत्तर आत्मा को मलिन करके व्यर्थ कर्म–बन्धन कराने वाली प्रवृत्तियाँ अनर्थ दण्ड हैं। इनसे निष्प्रयोजन पाप होता है। अत: वे सारी क्रियाएँ जिनसे अपना या अपने कुटुम्ब का कोई भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता हो, अनर्थ दण्ड है।

प्र. 58. प्रमादाचरण किसे कहते हैं?

उत्तर घर, व्यापार, सेवा आदि के कार्य करते समय बिना प्रयोजन हिंसादि पाप न हो, सप्रयोजन भी कम से कम पाप हो, इसका ध्यान न रखना। हिंसादि के साधन व निमित्तों को जहाँ–तहाँ, ज्यों–ज्यों रख देना। घर, व्यापार, सेवा आदि से बचे हुए अधिकांश समय को इन्द्रियों के विषयों में (सिनेमा, ताश, शतरंज आदि में) व्यय करना, 'प्रमादाचरण' है। आत्म–गुणों में बाधक बनने वाली अन्य सभी प्रवृत्तियाँ भी प्रमादाचरण कहलाती हैं।

प्र. 59. प्रमाद किसे कहते हैं व उसके कितने भेद होते हैं?

उत्तर संवर-निर्जरा युक्त शुभ कार्य में यत्न-उद्यम न करने को प्रमाद कहते हैं। अथवा आत्म-स्वरूप का विस्मरण होना प्रमाद है। प्रमाद के पाँच भेद हैं-(1) मद्य (2) विषय (3) कषाय (4) निद्रा (5) विकथा। ये पाँचों प्रमाद जीव को संसार में पुन: पुन: गिराते-भटकाते हैं।

प्र. 60. रात्रि-भोजन-त्याग को बारह व्रतों में से किस व्रत में सम्मिलित किया जाना चाहिए?

उत्तर रात्रि-भोजन-त्याग को दसवें देसावगासिक व्रत के अन्तर्गत लेना युक्तिसंगत लगता है। दसवाँ व्रत प्राय: छठे व सातवें व्रत का संक्षिप्त रूप-एक दिन-रात के लिए है। अत: जीवन पर्यन्त के रात्रि-भोजन-त्याग को सातवें व्रत में तथा एक रात्रि के लिए रात्रि-भोजन-त्याग को दसवें व्रत में माना जाना चाहिए।

प्र. 61. रात्रि-भोजन-त्याग श्रावक-व्रतों के पालन में किस प्रकार सहयोगी बनता है?

उत्तर रात्रि-भोजन-त्याग श्रावक-व्रतों के पालन में निम्न प्रकार सहयोगी बनता है-

1. रात्रि-भोजन करने वाले गर्म भोजन की इच्छा से प्राय: रात्रि में भोजन सम्बन्धी आरम्भ-समारम्भ करते हैं। रात्रि में भोजन बनाते समय त्रस जीवों की भी विशेष हिंसा होती है, रात्रि-भोजन-त्याग से वह हिंसा रुक जाती है।
2. माता-पिता आदि से छिपकर होटल आदि में खाने की आदत छूट जाती है तथा झूठ भी नहीं बोलना पड़ता।

3. ब्रह्मचर्य पालन में सहजता आती है।
4. अधिक रात्रि तक व्यापार आदि न करके जल्दी घर आने से परिग्रह–आसक्ति में कमी आती है।
5. भोजन में काम आने वाले द्रव्यों की मर्यादा सीमित हो जाती है।
6. दिन में भोजन बनाने की अनुकूलता होने पर भी लोग रात्रि में भोजन बनाते हैं, किन्तु रात्रि–भोजन–त्याग से रात्रि में होने वाली हिंसा का अनर्थदण्ड रुक जाता है।
7. सायंकालीन सामायिक–प्रतिक्रमण आदि का भी अवसर प्राप्त हो सकता है। घर में महिलाओं को भी सामायिक–स्वाध्याय आदि का अवसर मिल सकता है।
8. उपवास आदि करने में भी अधिक बाधा नहीं आती, भूख–सहन करने की आदत बनती है, जिससे अवसर आने पर उपवास–पौषध आदि भी किया जा सकता है।
9. सायंकाल के समय सहज ही सन्त–सतियों के आतिथ्य–सत्कार (गौचरी बहराना) का भी लाभ मिल सकता है।

प्र. 62. रात्रि-भोजन करने से क्या-क्या हानियाँ हैं?

उत्तर रात्रि–भोजन करने से मुख्य हानि तो भगवान की आज्ञा का उल्लंघन है। इसके साथ ही बुद्धि का विनाश, जलोदर रोग होना, वमन, कोढ़, स्वर भंग, निद्रा न आना, आयु घटना, पेट की बीमारियाँ आदि अनेक शारीरिक हानियाँ होती हैं।

प्र. 63. रात्रि-भोजन-त्याग से क्या लाभ हैं?

उत्तर रात्रि–भोजन–त्याग से निम्न प्रमुख लाभ होते हैं–

1. जीवों को अभयदान मिलता है।
2. अहिंसा व्रत का पालन होता है।
3. पेट को विश्राम मिलता है।
4. मनुष्य बुद्धिमान और निरोग बनता है।
5. दुर्व्यसनों से बच जाता है।
6. मन और इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं।
7. सुपात्र दान का लाभ मिलता है।
8. प्रतिक्रमण, स्वाध्याय आदि का लाभ मिलता है।
9. आहारादि का त्याग होने से कर्मों की निर्जरा होती है।

प्र. 64. कौनसा मद किसने किया?

उत्तर	जाति मद	–	हरिकेशी ने पूर्वभव में।
	कुल मद	–	मरीचि ने
	बल मद	–	श्रेणिक महाराज ने
	रूप मद	–	सनत् कुमार चक्रवर्ती ने
	तप मद	–	कुरगडु ने पूर्वभव में
	लाभ मद	–	सुभूम चक्रवर्ती ने
	श्रुत मद	–	स्थूलिभद्र ने
	ऐश्वर्य मद	–	दशार्णभद्र राजा ने

प्र. 65. पौषध में किनका त्याग करना आवश्यक है?

उत्तर पौषध में चारों प्रकार के सचित्त आहार का, अब्रह्म–सेवन का, स्वर्णाभूषणों का, शरीर की शोभा–विभूषा का, शस्त्र–मूसलादि का एवं अन्य सभी सावद्य कार्यों का त्याग करना आवश्यक है।

प्र. 66. पौषध कितने प्रकार के हैं?

उत्तर पौषध दो प्रकार के हैं-(1) प्रतिपूर्ण और (2) देश पौषध। जो पौषध कम से कम आठ प्रहर के लिए किया जाता है, वह प्रतिपूर्ण पौषध कहलाता है तथा जो पौषध कम से कम चार अथवा पाँच प्रहर का होता है, वह देश पौषध कहलाता है। देश पौषध यदि चौविहार उपवास के साथ किया है तो ग्यारहवाँ पौषध और यदि तिविहार उपवास के साथ किया जाता है तो दसवाँ पौषध कहलाता है। ग्यारहवाँ पौषध कम से कम पाँच प्रहर का तथा दसवाँ पौषध कम से कम चार प्रहर का होता है।

प्र. 67. दया व्रत को कौन-से व्रत में मानना चाहिये?

उत्तर दो करण तीन योग से सात प्रहर के लिए होने वाले दया व्रत में दिन में अचित्त आहार-पानी सेवन हो सकता है। संवर होने के कारण उसमें 11 सामायिक का लाभ बताया है। तथा सात प्रहर में लगभग 11 सामायिक और करने से वह लाभ 22 सामायिक या अधिक का हो जाता है। चार प्रहर के 10वें पौषध में 25 सामायिक का लाभ मिलता है। उसमें दिन भर उपवास व रात्रिकालीन संवर की साधना रहती है। जबकि दया में सात प्रहर तक संवर की साधना होती है। पर दिन में उपवास नहीं होता है।

इन दोनों का अंतर ध्यान में रह सके इसलिए पूर्वाचार्यों ने 'दया' संज्ञा से इसे अभिहित किया। इसकी आराधना में व्रत ग्यारहवाँ ही समझा जाता है।

प्र. 68. सामायिक व पौषध में क्या अन्तर हैं?

उत्तर श्रावक-श्राविकाओं की सामायिक केवल एक मुहूर्त्त यानी 48

मिनट की होती है, जबकि पौषध कम से कम चार प्रहर का (लगभग 12 घण्टे का) होता है। सामायिक में निद्रा और आहार का त्याग करना ही होता है, जबकि पौषध चार और उससे अधिक प्रहर का होने से रात्रि के समय में निद्रा ली जा सकती है। प्रतिपूर्ण पौषध में तो दिन में भी चारों आहारों का त्याग रहता है, जबकि देश पौषध के ग्यारहवें पौषध में तो दिन में चारों आहार का त्याग होता है किंतु दसवें पौषध में दिन में अचित्त पानी ग्रहण किया जा सकता है। रात्रि में तो उक्त सभी में चौविहार ही होता है।

प्र. 69. पहले सामायिक ली हुई हो और पीछे पौषध की भावना जगे तो, सामायिक पालकर पौषध ले या सीधे ही?

उत्तर पौषध सीधे ही लेना चाहिए, क्योंकि पालकर लेने से बीच में अव्रत लगता है। कदाचित् पालते-पालते उसकी भावना मन्द भी हो सकती है।

प्र. 70. पौषध लेने के पश्चात् सामायिक का काल आ जाने पर सामायिक पालें या नहीं?

उत्तर सामायिक विधिवत् न पालें, क्योंकि पौषध चल रहा है। सामायिक-पूर्ति की स्मृति के लिए नमस्कार मंत्र आदि गिन लें।

प्र. 71. पौषध में सामायिक करें या नहीं?

उत्तर पौषध में सावद्य योगों का त्याग होने से सामायिक की तरह ही है, परन्तु निद्रा, आलम्बन आदि इतने समय तक नहीं लूँगा, आदि के नियम कर सकते हैं।

प्र. 72. बारह व्रतों में बिना करण कोटि का कौनसा व्रत है?

उत्तर बारहवाँ अतिथि संविभाग व्रत।

प्र. 73. बारहवें व्रत को धारण करने वालों को मुख्य रूप से किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?

उत्तर 1. भोजन बनाने वाले और करने वालों को सचित्त वस्तुओं का संघट्टा न हो, इस प्रकार बैठना चाहिए। 2. घर में सचित्त-अचित्त वस्तुओं को अलग-अलग रखने की व्यवस्था होनी चाहिए। 3. सचित्त वस्तुओं का काम पूर्ण होने पर उनको यथा स्थान रखने की आदत होनी चाहिए। 4. कच्चे पानी के छींटे, हरी वनस्पति का कचरा व गुठलियाँ आदि को घर में बिखेरने की प्रवृत्ति नहीं रखनी चाहिए। 5. धोवन पानी के बारे में अच्छी जानकारी करके अपने घर में सहज बने अचित्त कल्पनीय पानी को तत्काल फैंकने की आदत नहीं रखनी चाहिए, उसे योग्य स्थान में रखना चाहिए। 6. दिन में घर का दरवाजा खुला रखने की प्रवृत्ति रखनी चाहिए। 7. साधु मुनिराज घर में पधारें तो सूझता होने पर तथा मुनिराज के अवसर होने पर स्वयं के हाथ से दान देने की उत्कृष्ट भावना रखनी चाहिए। 8. साधुजी की गोचरी के विधि-विधान की जानकारी उनकी संगति, चर्चा एवं शास्त्र-स्वाध्याय से निरन्तर बढ़ाते रहना चाहिए। 9. साधु मुनिराज गवेषणा करने के लिए कुछ भी पूछताछ करे तो झूठ नहीं बोलना चाहिए।

प्र. 74. संत-सतियों को कितने प्रकार की वस्तुएँ दान दे सकते हैं?

उत्तर मुख्यत: चौदह प्रकार की वस्तुएँ दान दे सकते हैं। उनका वर्णन आवश्यक सूत्र के 12वें अतिथि संविभाग व्रत में इस

प्रकार हैं–अशन, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण, चौकी, पट्टा, पौषधशाला (घर), संस्तारक, औषध और भेषज। इनमें अशन से रजोहरण तक की वस्तुएँ अप्रतिहारी तथा चौकी से भेषज तक की वस्तुएँ प्रतिहारी कहलाती हैं। जो लेने के बाद वापस न लौटा सके, वे अप्रतिहारी तथा जो वापस लौटा सके, वे वस्तुएँ प्रतिहारी कहलाती हैं।

प्र. 75. अतिथि संविभाग व्रत का क्या स्वरूप है?

उत्तर जिनके आने की कोई तिथि या समय नियत नहीं हैं, ऐसे पंच महाव्रतधारी निर्ग्रन्थ श्रमणों को उनके कल्प के अनुसार चौदह प्रकार की वस्तुएँ नि:स्वार्थ भाव से आत्म–कल्याण की भावना से देना तथा दान का संयोग न मिलने पर भी सदा दान देने की भावना रखना, अतिथि संविभाग व्रत है।

प्र. 76. बारह व्रतों में कितने विरमण व्रत व कितने अन्य व्रत हैं? कारण सहित स्पष्ट कीजिए?

उत्तर बारह व्रतों में पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवाँ व आठवाँ व्रत विरमण व्रत कहलाते हैं, क्योंकि इनमें हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह व अनर्थदण्ड का क्रमश: त्याग किया जाता है। छठा व सातवाँ व्रत परिमाण व्रत कहलाते हैं, क्योंकि इनमें दिशाओं एवं खाने–पीने की मर्यादा की जाती है। सामान्यत: श्रावक पूर्ण त्याग नहीं कर पाता, वह मर्यादा ही करता है, इसलिये उन्हें परिमाण व्रत कहा है।

नवमाँ, दसवाँ, ग्यारहवाँ व बारहवाँ व्रत शिक्षाव्रत कहलाते हैं, क्योंकि इनमें अणुव्रतों–गुणव्रतों के पालन का अभ्यास किया जाता है।

प्र. 77. बारहवें व्रत में करण-योग क्यों नहीं है ?

उत्तर बारहवें व्रत में साधु-साध्वी को चौदह प्रकार की निर्दोष वस्तुएँ देने तथा भावना भाने का उल्लेख है। पापों के त्याग का वर्णन नहीं होने से इसमें करण-योग की आवश्यकता नहीं है।

प्र. 78. बारह व्रतों में मूल व्रत कितने और उत्तर व्रत कितने हैं ?

उत्तर पाँच अणुव्रत मूल व्रत हैं, क्योंकि वे बिना सम्मिश्रण के बने हुए हैं। शेष व्रत उत्तर व्रत हैं, क्योंकि वे मूल व्रतों के सम्मिश्रण से या उन्हीं के विकास से बने हैं।

प्र. 79. 'संलेखना' किसे कहते हैं ?

उत्तर जीवन का अन्तिम समय आया जान कर कषायों एवं शरीर को कृश करने के लिए जो तप-विशेष किया जाता है, उसे संलेखना कहते हैं। संलेखना कर 'संथारा' ग्रहण किया जाता है। संथारा अपनी शक्ति, सामर्थ्य एवं परिस्थिति के अनुसार तिविहार अथवा चौविहार दोनों प्रकार से किया जा सकता है।

प्र. 80. मारणांतिक संथारे की विधि क्या है ?

उत्तर संथारे का योग्य अवसर देखकर साधु-साध्वीजी की सेवा में या साधु-साध्वियों का सान्निध्य प्राप्त नहीं होने पर अनुभवी श्रावक-श्राविका के सम्मुख अपने व्रतों में लगे अतिचारों की निष्कपट आलोचना कर प्रायश्चित्त ग्रहण करना चाहिए। पश्चात् कुछ समय के लिए या यावज्जीवन के लिए आगार सहित अनशन लेना चाहिए। इसमें आहार और अठारह पाप का तीन करण-तीन योग से त्याग किया जाता है। यदि किसी का संयोग नहीं मिले तो स्वयं भी आलोचना कर संलेखना तप

ग्रहण कर सकते हैं। यदि तिविहार अनशन ग्रहण करना हो तो 'पाणं' शब्द नहीं बोलना चाहिए। गादी, पलंग का सेवन, गृहस्थों द्वारा सेवा आदि कोई छूट रखनी हो तो उसके लिए आगार रख लेना चाहिए। संथारे के लिए शरीर व कषायों को कृश करने का अभ्यास संलेखना द्वारा करना चाहिए।

प्र. 81. उपसर्ग के समय संथारा कैसे करना चाहिए?

उत्तर जहाँ उपसर्ग उपस्थित हो, वहाँ की भूमि पूँज कर बड़ी संलेखना में आये हुए 'नमोत्थु णं से विहरामि' तक पाठ बोलना चाहिए और आगे इस प्रकार बोलना चाहिए ''यदि उपसर्ग से बचूँ तो अनशन पालना कल्पता है, अन्यथा जीवन पर्यन्त अनशन है।''

प्र. 82. तप के अतिचार कौन-कौनसे हैं?

उत्तर जो संलेखना के अतिचार हैं, वे ही तप के अतिचार हैं। जैसे- (1) इस लोक के सुख की इच्छा करना। (2) परलोक के सुख की इच्छा करना। (3) प्रशंसा मिलने पर अधिक तप करना एवं अधिक जीने की कामना करना। (4) असाता को देखकर ऐसी चिन्ता करना कि जो तप मैंने किया, वह शीघ्र पूरा हो। (5) आहारादि की एवं देव प्रदत्त काम-भोगों की इच्छा करना।

प्र. 83. तप से मिलने वाले फल कौन-कौन से हैं?

उत्तर इहलोक की दृष्टि से बाह्य तप से शरीर के रोग तथा विकार नष्ट होते हैं, शरीर दृढ़ बनता है। आभ्यन्तर तप से लोगों में प्रीति, आदर, विनय आदि होता है। आध्यात्मिक दृष्टि से आत्मा के कर्म रोग तथा कर्म विचार नष्ट होने से आत्मा

सशक्त बनती है। लब्धियाँ प्राप्त होती हैं, देव सेवा करते हैं, इत्यादि तप के अनेक फल हैं।

प्र. 84. श्रावक के अतिचार कितने व कौन-कौन से हैं?

उत्तर श्रावक के 99 अतिचार हैं। ज्ञान के 14, दर्शन के 5, चारित्राचारित्र के (60+15) 75 व तप (संलेखना) के 5 हैं।

प्र. 85. खमासमणो और भाव वन्दना का आसन किसका प्रतीक है?

उत्तर खमासमणो का आसन कोमलता व नम्रता का प्रतीक है तथा वन्दना का आसन शरणागति व विनय का प्रतीक है।

प्र. 86. इच्छामि खमासमणो दो बार क्यों बोला जाता है?

उत्तर जिस प्रकार दूत राजा को नमस्कार कर कार्य निवेदन करता है और राजा से विदा होते समय फिर नमस्कार करता है, उसी प्रकार शिष्य कार्य को निवेदन करने के लिए अथवा अपराध की क्षमायाचना करने के लिए गुरु को 'खमासमणो' के पाठ से प्रथम वंदना करता है, और जब गुरु महाराज क्षमा प्रदान कर देते हैं, तब शिष्य पुन: वन्दना करके वापस चला जाता है। बारह आवर्तन पूर्वक वंदन की पूरी विधि दो बार इच्छामि खमासमणो बोलने से ही सम्भव है। अत: पूर्वाचार्यों ने दो बार इच्छामि खमासमणो बोलने की विधि बतलायी है।

प्र. 87. 'इच्छामि खमासमणो' के पाठ में आये ''आवस्सियाए पडिक्कमामि'' दूसरे खमासमणो में क्यों नहीं बोलते हैं?

उत्तर जिस प्रकार प्रतिक्रमण की अन्य पाटियों के उच्चारण की अपनी-अपनी विधियाँ एवं मुद्राएँ हैं उसी प्रकार खमासमणो में

पहली बार गुरु के अवग्रह (गुरु के समीप देह प्रमाण क्षेत्र) में प्रवेश करके निकलने की एवं दूसरी बार अवग्रह में प्रवेश करने एवं नहीं निकलने की विधि बतलाई है। श्री समवायांग सूत्र में वंदन विधि में इसी प्रकार निर्देश है।

प्र. 88. वन्दना किसे कहते हैं ?

उत्तर क्षमा आदि गुणों के धारक साधुओं को आवर्तन देना, पंचांग नमाकर वन्दना करना, उनके चरण स्पर्श करना, उनकी चारित्र सम्बन्धी समाधि तथा शरीर, इन्द्रिय, मन सम्बन्धी सुख साता पूछना, उनके प्रति जाने-अनजाने में हुई आशातना का पश्चात्ताप करना आदि 'वन्दना' है।

प्र. 89. प्रथम पद की वन्दना में जघन्य बीस तथा उत्कृष्ट एक सौ साठ तथा एक सौ सित्तर तीर्थङ्करजी की गणना किस प्रकार की गई है ?

उत्तर महाविदेह क्षेत्र पाँच हैं-एक जम्बूद्वीप में, दो धातकी खण्ड में और दो अर्धपुष्कर द्वीप में।

प्रत्येक महाविदेह क्षेत्र के मध्य में मेरुपर्वत है। इसके मध्य में आने से पूर्व व पश्चिम की अपेक्षा दो-दो भेद हो जाते हैं। पूर्व महाविदेह के मध्य में सीता नदी और पश्चिम महाविदेह के मध्यम में सीतोदा नदी आ जाने से एक-एक के पुनः दो-दो विभाग हो जाते हैं। इस प्रकार प्रत्येक के चार विभाग हो गये। इन चारों विभागों में आठ-आठ विजय हैं। अतः एक महाविदेह में 8 X 4 = 32 विजय तथा 5 महाविदेह में 32 X 5 = 160 विजय हैं।

जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में जघन्य (कम से कम) चार तीर्थङ्कर, धातकी खण्ड द्वीप के दोनों महाविदेह क्षेत्रों में 8 और पुष्करार्द्ध द्वीप के दोनों महाविदेह क्षेत्रों में 8 इस प्रकार अढ़ाई द्वीप में कुल मिलाकर जघन्य 20 विहरमान तीर्थङ्कर समकालीन अवश्यमेव सदा ही विद्यमान रहते हैं। यदि अधिक से अधिक हो तो पाँचों महाविदेह क्षेत्र की सभी 160 विजयों में एक साथ एक-एक तीर्थङ्कर हो सकते हैं। जिससे 160 तीर्थङ्कर होते हैं। यदि उसी समय में अढ़ाई द्वीप के पाँच भरत और पाँच ऐरवत इन दस क्षेत्रों में भी प्रत्येक में एक-एक तीर्थङ्कर हों तो कुल मिलाकर 160 + 10 = 170 तीर्थङ्कर जी उत्कृष्ट रूप में एक साथ हो सकते हैं।

प्र. 90. सिद्धों के 14 प्रकार कौन-कौन से हैं?

उत्तर स्त्रीलिङ्ग सिद्ध, पुरुषलिङ्ग सिद्ध, नपुंसकलिङ्ग सिद्ध, स्वलिङ्ग सिद्ध, अन्यलिङ्ग सिद्ध, गृहस्थलिङ्ग सिद्ध, जघन्य अवगाहना, मध्यम अवगाहना, उत्कृष्ट अवगाहना वाले सिद्ध, उर्ध्व लोक से, मध्य लोक से, अधो लोक से होने वाले सिद्ध, समुद्र में तथा जलाशय में होने वाले सिद्ध। इनका कथन उत्तराध्ययन सूत्र के छत्तीसवें अध्ययन की गाथा 50-51 में है।

प्र. 91. चौथे आवश्यक में कभी बायाँ, कभी दायाँ घुटना ऊँचा क्यों करते हैं?

उत्तर चौथा प्रतिक्रमण आवश्यक है। इसमें व्रतों में लगे हुए अतिचारों की आलोचना एवं व्रत-धारण की प्रतिज्ञा का स्मरण किया जाता है। व्रतों की आलोचना के लिए मन-वचन-काया से

विनय–समर्पणता आवश्यक है। बायाँ घुटना विनय का प्रतीक होने से व्रतों में लगे हुए अतिचारों की आलोचना के समय बायाँ घुटना खड़ा करके बैठते हैं, अथवा खड़े होते हैं। श्रावक सूत्र में व्रत–धारण रूप प्रतिज्ञा की जाती है। प्रतिज्ञा–संकल्प में वीरता की आवश्यकता है। दायाँ घुटना वीरता का प्रतीक होने से इस समय में दायाँ घुटना खड़ा करके व्रतादि के पाठ बोले जाते हैं।

प्र. 92. 'करेमि भंते' के पाठ को प्रतिक्रमण करते समय पुन: पुन: क्यों बोला जाता है?

उत्तर समभाव की स्मृति बार–बार बनी रहे, प्रतिक्रमण करते समय कोई सावद्य प्रवृत्ति न हो, राग–द्वेषादि विषम भाव नहीं आये, इसके लिए प्रतिक्रमण में करेमि भंते का पाठ पहले, चौथे व पाँचवें आवश्यक में कुल तीन बार बोला जाता है।

प्र. 93. कायोत्सर्ग आवश्यक क्यों है?

उत्तर अविवेक व असावधानी से लगे अतिचारों से ज्ञानादि गुणों में जो मलिनता आती है, उसे निकालने के लिए, देह–सुख की ममता छोड़कर कायोत्सर्ग करना आवश्यक है। इससे हमारे आत्मिक गुण शुद्ध–निर्मल बनते हैं।

प्र. 94. आवश्यक सूत्र के छह आवश्यकों के (भेदों के) क्रम की सार्थकता स्पष्ट कीजिए।

उत्तर आलोचना प्रारम्भ करने के पूर्व आत्मा में समभाव की प्राप्ति होना आवश्यक है, अत: सावद्य योग के त्याग रूप पहला सामायिक आवश्यक बताया गया है। सावद्य योगों से विरति

रूप मोक्षमार्ग का उपदेश तीर्थङ्कर प्रभु ने दिया है, अत: उनकी स्तुति रूप दूसरा चतुर्विंशतिस्तव आवश्यक है। इससे दर्शन विशुद्धि होती है। तीर्थङ्करों द्वारा बताये हुए धर्म को गुरु महाराज ने हमें बताया है। अत: उनको वन्दन कर, उनके प्रति समर्पित होकर आलोचना करने के लिए तीसरा वन्दना आवश्यक बताया गया है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप में जो अतिचार लगते हैं, उनकी शुद्धि के लिए आलोचना करने एवं पुन: व्रतों में स्थिर होने रूप चौथा प्रतिक्रमण आवश्यक है। आलोचना करने के बाद अतिचार रूप घाव पर प्रायश्चित्त रूप मरहम पट्टी करने के लिए पाँचवाँ कायोत्सर्ग आवश्यक बताया गया है। कायोत्सर्ग करने के बाद तप रूप नये गुणों को धारण करने के लिए छठा प्रत्याख्यान आवश्यक बताया गया है।

प्र. 95. चौरासी लाख जीवयोनि के पाठ में 18 लाख 24 हजार 120 प्रकारे मिच्छा मि दुक्कडं दिया जाता है। ये प्रकार किस तरह से बनते हैं?

उत्तर जीव के 563 भेदों को 'अभिहया वत्तिया' आदि दस विराधना से गुणा करने पर 5,630 भेद बनते हैं। फिर इनको राग और द्वेष के साथ गुणा करने पर 11,260 भेद बनते हैं। फिर इनको मन, वचन और काया इन तीन योगों से गुणा करने पर 33,780 भेद होते हैं। फिर इनको तीन करण से गुणा करने पर 1,01,340 भेद बनते हैं। इनको तीन काल से गुणा करने पर 3,04,020 भेद हो जाते हैं। फिर इनको पंच परमेष्ठी और स्वयं की आत्मा, इन छह से गुणा करने पर

18,24,120 प्रकार बनते हैं, अत: इतने प्रकारे 'मिच्छा मि दुक्कडं' दिया जाता है।

प्र. 96. चौरासी लाख जीवयोनि के पाठ में बतलाए गये पृथ्वीकाय के सात लाख आदि भेद किस प्रकार बनते हैं?

उत्तर चौरासी लाख जीवयोनि के पाठ में जीवों के उत्पत्ति स्थान की अपेक्षा से भेद बतलाये गये हैं। उत्पत्ति स्थान वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श अथवा संस्थान से युक्त होता है। पृथ्वीकाय के मूल भेद 350 माने जाते हैं। इन भेदों को 5 वर्ण, 2 गन्ध, 5 रस, 8 स्पर्श और 5 संस्थान से अलग-अलग गुणा करने पर पृथ्वीकाय के सात लाख भेद बनते हैं। जैसे 350 X 5 वर्ण = 1750 X 2 गन्ध = 3500 X 5 रस = 17500 X 8 स्पर्श = 1,40,000 X 5 संस्थान = 7,00,000 भेद होते हैं।

इसी प्रकार अप्काय के 350, तेउकाय के 350, वायुकाय के 350, सूक्ष्म वनस्पतिकाय के 500, साधारण वनस्पति के 700, बेइन्द्रिय के 100, तेइन्द्रिय के 100, चौरेन्द्रिय के 100, देवता के 200, नारकी के 200, तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय के 200 और मनुष्य के 700 मूल भेद बतलाये हैं। इन भेदों को उपर्युक्त क्रमानुसार वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान के भेदों से गुणा करने पर इनके भी इसी प्रकार भेद बनते हैं।

प्र. 97. अणुव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर अणु अर्थात्-छोटा। जो व्रतों-महाव्रतों की अपेक्षा छोटे होते

हैं तथा कर्मों की स्थिति आदि को छोटा करने में सहायक होने से प्रथम पाँच व्रतों को अणुव्रत कहते हैं।

प्र. 98. गुणव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर जो अणुव्रतों को गुण अर्थात्–लाभ पहुँचाते हैं अथवा पुष्ट करते हैं उन्हें गुणव्रत कहते हैं।

प्र. 99. शिक्षाव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर जैसे कोई व्यक्ति किसी को रत्नादि देता है तो साथ में उसे सुरक्षित रखने की शिक्षा भी देता है, उसी प्रकार आठ व्रतों की सुरक्षा के लिए अन्तिम चार व्रतों की शिक्षा देने के कारण इन्हें शिक्षाव्रत कहते हैं।

प्रत्याख्यान के पाठ

1. नमोक्कार-सहियं (नवकारसी)

उग्गए सूरे नमोक्कारसहियं पच्चक्खामि चउव्विहं पि आहारं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं वोसिरामि।[1]

2. पोरिसि-सूत्र (पोरसी)

उग्गए सूरे पोरिसिं पच्चक्खामि, चउव्विहं पि आहारं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं, पच्छन्नकालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि।

3. पुरिमड्ढं-सूत्र (दो पोरसी)

उग्गए सूरे पुरिमड्ढं पच्चक्खामि, चउव्विहं पि आहारं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं, पच्छन्नकालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि।

4. एगासण-सूत्र (एकासना)

एगासणं पच्चक्खामि तिविहं पि आहारं असणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेण, सागारियागारेणं, आउंटण-पसारणेणं, गुरु-अब्भुट्ठाणेणं, (पारिट्ठावणियागारेणं), महत्तरागारेणं, सव्वसमाहि-वत्तियागारेणं वोसिरामि।

1. खुद त्याग करे तो वोसिरामि ऐसा तीन बार बोले और दूसरों को त्याग कराना हो तो ''वोसिरे'' ऐसा तीन बार बोलें।

5. एगट्ठाण-सूत्र (एक स्थान)

एगट्ठाणं पच्चक्खामि चउव्विहं पि आहारं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं, सागारियागारेणं, गुरुअब्भुट्ठाणेणं, (पारिट्ठावणियागारेणं), महत्तरागारेणं, सव्वसमा-हिवत्तियागारेणं वोसिरामि।

6. आयंबिल-सूत्र

आयंबिलं पच्चक्खामि अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं, लेवालेवेणं, उक्खित्तविवेगेणं, गिहिसंसट्ठेणं, (पारिट्ठावणियागारेणं), महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि।

7. अभत्तट्ठं-सूत्र (उपवास)

उग्गए सूरे अभत्तट्ठं पच्चक्खामि, तिविहं पि/चउव्विहं पि आहारं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं, (पारिट्ठावणियागारेणं), महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि।

8. दिवसचरिम-सूत्र

दिवसचरिमं पच्चक्खामि, चउव्विहं पि आहारं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं अन्नत्थऽणाभोगेणं सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि।

9. अभिग्गह-सूत्र (अभिग्रह)

अभिग्गहं पच्चक्खामि, चउव्विहं पि आहारं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्व-समाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि।

10. निव्विगइयं-सूत्र (नीवी)

निव्विगइयं पच्चक्खामि, अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं, लेवालेवेणं, गिहिसंसट्ठेणं, उक्खित्तविवेगेणं, पडुच्चमक्खिएणं, (पारिट्ठावणियागारेणं), महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि।

प्रत्याख्यान पारने का सूत्र

उग्गए सूरे········ (जो प्रत्याख्यान किया हो उसका नाम लेना) पच्चक्खाणं कयं, तं पच्चक्खाणं सम्मं काएणं न फासियं, न पालियं, न तीरियं, न किट्टियं, न सोहियं, न आराहियं, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

❑❑❑

पौषध की विधि

पौषध व्रत ग्रहण करने का पाठ–

(अ) प्रतिपूर्ण पौषध (अष्ट प्रहर पौषध)–प्रतिपूर्ण पौषध व्रत पच्चक्खामि–सव्वं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं का पच्चक्खाण, अबंभ सेवन का पच्चक्खाण, अमुकमणि–सुवर्ण का पच्चक्खाण, माला–वण्णग–विलेवण का पच्चक्खाण, सत्थमूसलादिक सावज्ज–जोग सेवन का पच्चक्खाण, जाव अहोरत्तं पज्जुवासामि दुविहं–तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा वयसा, कायसा, तस्स भंते! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

(ब) ग्यारहवाँ पौषध–ग्यारहवाँ पौषध व्रत पच्चक्खामि–सव्वं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं का पच्चक्खाण, अबंभ सेवन का पच्चक्खाण, अमुकमणि–सुवर्ण का पच्चक्खाण, माला–वण्णग–विलेवण का पच्चक्खाण, सत्थमूसलादिक सावज्ज–जोग सेवन का पच्चक्खाण सूर्योदय तक, पज्जुवासामि दुविहं–तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा, तस्स भंते! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

(स) दसवाँ पौषध–दसवाँ पौषध व्रत असणं, पाणं, खाइमं, साइमं का पच्चक्खाण। द्रव्य से–सर्व सावद्य योगों का त्याग, क्षेत्र से–सम्पूर्ण लोक में, काल से–सूर्योदय तक, भाव से–दो करण तीन योग से, उपयोग सहित तस्स भंते! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

पौषध व्रत पारने का पाठ–

प्रतिपूर्ण पौषध/ग्यारहवाँ पौषध/दसवाँ पौषध व्रत के विषय में

जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं-1. पौषध में शय्या संथारा न देखा हो या अच्छी तरह से न देखा हो, 2. प्रमार्जन न किया हो या अच्छी तरह से न किया हो, 3. उच्चार पासवण की भूमि को न देखी हो अथवा अच्छी तरह से न देखी हो, 4. पूँजी न हो या अच्छी तरह से न पूँजी हो, 5. उपवास युक्त पौषध का सम्यक् प्रकार से पालन न किया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस संबंधी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं। अन्त में तीन नवकार मंत्र बोलना चाहिए।

पौषध व्रत ग्रहण करने की विधि-

तिक्खुत्तो का पाठ तीन बार, नवकार मन्त्र, इच्छाकारेणं, तस्सउत्तरी, एक इच्छकारेणं का काउस्सग्ग, काउस्सग्ग शुद्धि का पाठ, एक लोगस्स, पौषध ग्रहण करने का पाठ, दो नमोत्थु णं।

पौषध व्रत पारने की विधि-

सामायिक पारने के समान ही क्रम से सभी पाठ बोलना। जैसे- नवकार मन्त्र, इच्छाकारेणं, तस्सउत्तरी, एक लोगस्स का काउस्सग्ग, काउस्सग्ग शुद्धि का पाठ, एक लोगस्स, दो नमोत्थु णं, पौषध व्रत पारने का पाठ, तीन नवकार मन्त्र।

पौषध के दोष-

पौषध व्रत की विशुद्ध आराधना करने हेतु निम्नांकित 18 दोषों से बचना अनिवार्य हैं-

1. पौषध के निमित्त ठूँस-ठूँस कर आहार करे।
2. पौषध के निमित्त पहली रात्रि में मैथुन सेवे।
3. पौषध के निमित्त नख, केश आदि का संस्कार करे।

4. पौषध के निमित्त शरीर की सुश्रूषा करे।
5. पौषध के निमित्त आभूषण पहने।
6. पौषध के निमित्त सरस आहार करे।
7. पौषध में अव्रती से वैयावृत्त्य करावे।
8. पौषध में शरीर का मैल उतारे।
9. पौषध में बिना पूँजे शरीर खुजलावे।
10. पौषध में अकाल में निद्रा लेवे।
11. पौषध में वस्त्र धोवे या धुलवावे।
12. पौषध में प्रहर रात्रि बीतने से पहले सोवे व रात्रि के अंतिम प्रहर में उठकर धर्म जागरण नहीं करे।
13. पौषध में बिना पूँजे घऊमे और परठे।
14. पौषध में निंदा, विकथा, हँसी-मजाक करे।
15. पौषध में स्वयं डरे और दूसरों को डरावे।
16. पौषध में कलह करे।
17. पौषध में संसारी बातों की चर्चा करे।
18. पौषध में खुले मुँह अयतना से बोले। काका, मामा आदि संबंधियों को इन शब्दों से संबोधित करे।

उपर्युक्त 18 दोषों में से प्रथम छः दोष पौषध करने से पहले दिन लगते हैं और शेष पौषध के दिन में।

आत्म-शांति का पोषण करने के कारण इस व्रत का नाम पौषध है। पौषध की क्रिया साधुता के जीवन के नजदीक ले जाने वाली है। पौषध का उत्तम प्रकार से पालन करने वाला अपने जीवन को प्रशस्त बना लेता है।

पुस्तक :

श्रावक सामायिक प्रतिक्रमण सूत्र

(विधि, अर्थ एवं प्रश्नोत्तर सहित)

प्रकाशक :

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

दुकान नं. 182 के ऊपर,

बापू बाजार, जयपुर-3 (राजस्थान)

फोन : 0141-2575997

फैक्स : 0141-4068798

Email : sgpmandal@yahoo.in

तेईसवाँ संस्करण : 2016

सम्पादक : **पार्श्व कुमार मेहता**

मुद्रित प्रतियाँ : 5100

मूल्य : **10/-** (दस रुपये मात्र)

लेज़र टाइपसैटिंग :

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

मुद्रक : **दी डायमण्ड प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर**

अन्य प्राप्ति स्थल :

- **श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ**
  घोड़ों का चौक, **जोधपुर-342001**
  (राजस्थान)
  फोन : 0291-2624891

- **Shri Navratan ji Bhansali**
  C/o. Mahesh Electricals,
  14/5, B.V.K. Ayangar Road,
  BANGALURU-560053
  (Karnataka)
  Ph. : 080-22265957
  Mob. : 09844158943

- **Shri B. Budhmal ji Bohra**
  211, Akashganga Apartment,
  19 Flowers Road, Kilpauk,
  CHENNAI-600010 (TND)
  Ph. : 044-26425093
  Mob. : 09444235065

- **श्रीमती विजयानन्दिनी जी मल्हारा**
  ''रत्नसागर'', कलेक्टर बंगला रोड़,
  चर्च के सामने, 491-ए, प्लॉट नं. 4,
  जलगाँव-425001 (महा.)
  फोन : 0257-2223223

- **श्री दिनेश जी जैन**
  1296, कटरा धुलिया, चाँदनी चौक,
  दिल्ली-110006
  फोन : 011-23919370
  मो. 09953723403

प्रकाशकीय

'श्रावक सामायिक प्रतिक्रमण सूत्र' पुस्तक का तेईसवाँ संस्करण प्रकाशित करते हुए हमको अतीव प्रसन्नता हो रही है। प्रस्तुत पुस्तक में सामायिक व प्रतिक्रमण के पाठ विधि तथा अर्थ सहित दिये गये हैं। आगम के भाव समझने में अर्थ बहूपयोगी होता है। अत: प्रस्तुत सूत्र का भी हिन्दी अर्थ पुस्तक के पीछे दिया जा रहा है। प्रतिक्रमण की विधि प्रतिक्रमण के अन्त में आवश्यकों के अनुसार क्रमश: दी गई है, जिससे विधि का क्रम सरल व सुविधाजनक लगे। सामायिक और प्रतिक्रमण से सम्बन्धित 143 प्रश्नोत्तर भी दिये गये हैं जिससे पुस्तक की विशेषता बढ़ गई है।

सामायिक समभाव की साधना है जो अनुकूल व प्रतिकूल विषयों में सम रहने की प्रेरणा देती है। प्रतिक्रमण (आवश्यक सूत्र) के माध्यम से हम व्रतों में हुई स्खलना का चिन्तन कर उसे दूर करने का प्रयास करते हैं तथा भविष्य में दोषों की पुनरावृत्ति न हो इस हेतु भी प्रतिज्ञाबद्ध होते हैं। अत: जीवन के लिए दोनों ही क्रियाएँ आवश्यक हैं।

प्रस्तुत संस्करण का प्रूफ संशोधन श्री धर्मचन्द जी जैन, रजिस्ट्रार-अ.भा. श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड, जोधपुर व आध्यात्मिक शिक्षा समिति में सेवारत श्री राकेश कुमारजी जैन, जयपुर ने किया तथा लेज़र टाइप सेटिंग श्री प्रहलाद नारायण जी लखेरा द्वारा की गई है। अत: मण्डल परिवार इन सभी का हार्दिक आभार प्रकट करता है।

आशा है उक्त पुस्तक सभी वर्ग के लोगों के लिए उपयोगी होगी।

:: निवेदक ::

पारसचंद हीरावत	**पदमचंद कोठारी**	**प्रमोदचंद महनोत**	**विनयचन्द डागा**
अध्यक्ष	कार्याध्यक्ष	कार्याध्यक्ष	मन्त्री

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

प्रतिक्रमण का फल

प्रश्न- **पडिक्कमणेणं भंते! जीवे किं जणयइ?**

उत्तर- **पडिक्कमणेणं वय-छिद्दाइं पिहेइ। पिहिय-वय-छिद्दे पुणजीवे निरुद्धासवे असबलचरित्ते, अट्ठसु पवयणमायासु उवउत्ते अपुहत्ते सुप्पणिहिए विहरइ।**

उत्तराध्ययनसूत्र अध्ययन 29, सूत्र 11

प्रश्न-भगवन्! प्रतिक्रमण से जीव को क्या प्राप्त होता है?

उत्तर-प्रतिक्रमण से यह जीव ग्रहण किये हुए अहिंसादि व्रतों में अतिचार रूप जो छिद्र हैं, उन्हें ढाँकता है, अर्थात्-व्रतों में लगे हुए अतिचारादि दोषों से स्वयं को बचाता है। व्रतों को अतिचारादि दोषों से रहित करके आस्रवों (नये आते हुए क्रमों को) को रोकता है, अपने चारित्र को कलुषित नहीं होने देता, अर्थात्-शुद्ध, चारित्र युक्त होकर वह पाँच समिति और तीन गुप्ति रूप आठ प्रवचन माताओं के आराधन में सावधान हो जाता है, फिर चारित्र से अपृथक्-एक रूप होकर, संयम मार्ग में समाहित-चित्त होकर विचरता है।

ज्ञान-दर्शन-चारित्र में प्रमादवश जो दोष (अतिचार) लगे हों, उनके कारण जीव स्वस्थान से परस्थान में (संयम से असंयम में) गया हो, उससे प्रतिक्रम करना-वापिस लौटना-उन दोषों (या स्वकृत अशुभ योगों) से निवृत्त होना प्रतिक्रमण कहलाता है।

★☆★☆★

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

के

विविध सेवा सोपान

जिनवाणी हिन्दी मासिक पत्रिका का प्रकाशन

जैन इतिहास, आगम एवं अन्य सत्साहित्य का प्रकाशन

श्री जैन सिद्धान्त शिक्षण संस्थान का संचालन

उक्त प्रवृत्तियों में दानी एवं प्रबुद्ध चिन्तकों के रचनात्मक सक्रिय सहयोग की अपेक्षा है।

सम्पर्क सूत्र

मंत्री- सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

दुकान नं. 182-183 के ऊपर, बापू बाजार,

जयपुर-302003 (राजस्थान)

दूरभाष : 0141-2575997 फैक्स : 0141-2570753